Library No. 1901
Date of Receipt 18/12/28

मनुष्य जीवनके कर्तव्य ।

सूरजमल जैन ।

भारत-हिन्दी-ग्रन्थमाला।

स्थायी ग्राहकोंको विशेष सुभीता।

हमने भारतकी राष्ट्र भाषा हिन्दीमें नवीन २ ग्रंथोंको 'भारत-हिन्दी-ग्रंथमाला' के द्वारा प्रकाशित करनेका प्रयत्न किया है। यह ग्रंथमाला अपने ढंगकी निराली ही होगी। इसमें चुनी हुई उच्च श्रेणीकी भिन्न२ विषयोंकी पुस्तकें प्रकाशित करनेका प्रबंध किया गया है। प्रत्येक हिन्दी-हितैषीको ग्राहक बनकर हिन्दी साहित्य विस्तारके कार्यमें सहायता देनेके साथ २ बहुत कम मूल्यमें उच्च श्रेणीकी पुस्तकों द्वारा अपने पुस्तकालयकी श्रीवृद्धि करना चाहिये। इस मालाके द्वारा प्रतिवर्ष द्विमासिकके ढंगसे छह पुस्तकें निकला करेंगी। उनका मूल्य सर्व साधारणसे ७॥) से ९) तक होगा अर्थात् प्रतिपुस्तकका मूल्य साधारणतया १।) से १॥) रुपै तक रखा जायगा, परंतु जो एक बार प्रवेश शुल्कके ।॥) आने देकर हमारे स्थायी ग्राहक हो जावेंगे उन्हें प्रत्येक पुस्तक आधे मूल्यमें दी जावेगी। हिन्दी संसारमें हमारा यह नवीन ही प्रयत्न है। हिन्दीमें पौने मूल्यकी ग्रन्थमालाएँ तो कई निकलती हैं परंतु आधे मूल्यमें उच्च प्रतिका साहित्य देनेवाली यह एक ही ग्रन्थमाला है। अतएव हिन्दी भक्तों व रसिकोंके नाम एक कार्डको भेज देनेसे ग्राहक श्रेणीमें लिख लिया जाता है। ग्रन्थमालाका प्रथम पुष्प छप रहा है। इसका नाम है "**मेरी व्यापक शिक्षा**" यह पुस्तक अमेरीकाके प्रसिद्ध निग्रो बुकर टी वाशिंगटनकी "माई लार्जर एजुकेशन" नामक पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। भारतके प्रत्येक शिक्षित देशसेवकोंके घरमें इस पुस्तककी आवश्यकता है। मूल्य सर्व साधारणसे १।=), स्थायी ग्राहकोंसे ॥=), प्रवेश फीके ।॥) आने दो बारमें वसूल किये जावेंगे। पहिली बार पुस्तककी वी० पी० मय पोष्टेजके १=) आनेकी भेजी जायगी। शेष ।=) आने मालाके दूसरे पुष्पकी कीमतके साथ वसूल किये जायँगे। ग्राहकोंको शीघ्रता करना चाहिये। जो महाशय ग्रंथमालाके ग्राहक न होना चाहें उन्हें भी "मेरी व्यापक शिक्षाका" अवश्य संग्रह करना चाहिये। और उसे मँगानेका आर्डर साथवाले कार्डसे भेजना चाहिये।

विनीत-

सूरजमल जैन।

इन्दौर,
मल्हारगंज

ॐ

मनुष्यजीवनके कर्तव्य

लेखक—

बाबू सूरजमल जैन

सम्पादक "जैन-प्रभात"

प्रथमवार १००० प्रति] १९७३ [मूल्य ।–)आना.

सन् १९१६.

मुद्रक—

मूलचंदजी किसनदास कापडीया

"जैनविजय" प्रेस खपाटिया चकला–सूरत
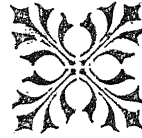
प्रकाशक—

सूरजमल जैन

सम्पादक "जैन प्रभात"

मल्हारगंज–इन्दौर

वक्तव्य

इस छोटीसी पुस्तिकामें मनुष्य जीवनके कर्तव्योंपर संक्षेपमें विचार किया गया है। यद्यपि इसके चर्चित विषयोंपर शृंखलाबद्ध विचार नहीं किया गया है तो भी जितने विषयोंकी चर्चा की गई है सब योग्य और मनुष्य जीवनके लिये उपयोगी हैं। हमने इसमें जो कुछ लिखा है, स्वतंत्र लिखा है, किसीकी प्रतिकृति नहीं की, तो भी संभव है कि बहुतसे विचार दूसरोंके विचारोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते होंगे। अथवा उनके देखनेसे वे दूसरोंकी प्रतिकृति दिखाई देंगे। पर इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं है। यह विचार विलक्षणता है। हमें आशा है कि हमारे पाठक इससे बहुत कुछ लाभ उठानेकी चेष्टा करेंगे। शुभम्।

लेखक.

विषयसूची।

ॐ

मनुष्यजीवनके कर्तव्य।

सच्चरित्रता।

सदाचरण मनुष्यका भूषण है। असदाचरणी मनुष्य पशु समझना चाहिये। वह पृथ्वीका भार है। पृथ्वीपर जो रोग शोक, भय आदि दुर्घटनाएँ हुआ करती हैं वे ऐसे ही—असदाचरणी मनुष्योंकी कृतिके फल हैं। अतएव समाजमें सुख और शांतिके लिये सदाचरणी मनुष्योंकी आवश्यकता है।

सदाचरणसे न केवल मनुष्य जीवनका, किन्तु मनुष्य शरीरका भी मूल्य बढ़ जाता है। एक वैज्ञानिकने मनुष्यके शरीरका विश्लेषण कर उसकी कीमत २५) रु० निर्धारित की है। परंतु सदाचरणके मेलसे शरीरका मूल्य इतना अधिक हो जा सकता है कि उसके आगे संसारकी संपति भी कुछ नहीं है। आज जो प्राचीन कालके महात्माओंका नाम ले लेकर हमारे भारतवासी अकड़ते हैं उसका कारण क्या है? इतिहासके हजारों पृष्ठ जिस वर्णनसे भरे पड़े हैं उसका प्राण कहाँ है? दोनोंका उत्तर यही सदाचरण है। सदाचरणहीके कारण हम हमारे पूर्वजोंका अभिमान करते हैं और उनके सदाचरणका ही वर्णन इतिहासमें देखते हैं यदि यह निकाल दियाजाय—पूर्वजोंके जीवनसे सदाचरण प्रथक् कर दिया जाय तो न तो हमें अभिमान करनेहीका कोई कारण रहे और न फिर इतिहासहीकी कुछ आवश्यकता रहे। जिस तरह हमें हमारे पूर्वजोंके सदाचरणके द्वारा स्फूर्ति मिलती,

अभिमान होता और जीवन नवीनतामेंका संचार होता है उसे बनाये रखनेके लिये—स्थायी रहने देनेके लिये हमारा आवश्यकीय कर्तव्य है कि हम सदाचरणी बनें। क्योंकि हम भी भविष्यके पूर्वज हैं। और हमारे ही आचरणोंपर वर्तमान इतिहास भविष्यके उपयोगी हो सकेगा। गुरियोंके क्रमसे लगे रहनेपर ही मालाका जीवन अवलंबित है यदि बीचमेंसे कुछ गुरिये निकाल लिये जावें तो फिर माला नहीं रह सकती, उसी प्रकार संसारकी मालाके हम गुरिये हैं यदि हम अपने चारित्रसे उस मालामें स्थान नहीं पासके तो वह माला ही नहीं रहेगी और भविष्यकी संतानके लिये मालामें प्रविष्ट होनेको भी कोई कारण नहीं होगा। हम अपने आचरणोंसे भविष्यकी संतानके जीवनका मार्ग सरल तथा निःकंटक भी बना सकते हैं और उसे झाड़ियों व पत्थरोंसे भरकर भयंकर भी कर दे सकते हैं। निर्भय भी बना दे सकते हैं और अंधकारमय व सिंहोंकी गर्जनासे भयपूर्ण कर दे सकते हैं। यदि हमने अपना जीवन सदाचरणी नहीं बनाया तो समझना चाहिये कि संसारकी एक ऐसी सुमिरनी—माला बनानेका काम हमने बंद कर दिया अथवा उसे खंडित कर दी जिससे भविष्यमें अगणित मनुष्य लाभ उठा सकते। साथमें यह भी समझ लेना चाहिये कि हमने अपना अस्तित्व भी संसारसे उठा दिया। जन्म मरणसे जीवनके अस्तित्व नास्तित्वका--मौजूदगी और गैरमौजूदगीका संबंध नहीं है। क्योंकि हजारों ऐसे मनुष्य हो गये हैं जिनका मरण होनेको कितने ही वर्ष और युग व्यतीत हो गये परंतु उनका नाम संसारके स्मृति पत्रपर ज्योंकी त्यों अस्तित्व रखता है। क्या कोई कह सकता है कि ऐसे पुरुष नष्ट हो गये? विरुद्ध इसके लाखों क्रोड़ों मनुष्य ऐसे हो गये हैं जिनका नाम तक आज याद

नहीं । एक सदाचारी मनुष्य अपना नाम भविष्यमें अमर कर जाता है और दुराचारी मनुष्य अपने नामको इस तरह मिटाता है कि उसीकी तीसरी या चौथी पीढ़ीके मनुष्य उसके नामको भूल जाते हैं। अतएव मनुष्यमात्रका कर्तव्य है कि सदाचारी बनकर संसारकी स्मृति पत्रिकामें अपने जीवनका एक पाठ लिखावें और उसकी सुमिरनीमें—मालामें स्थान प्राप्त करें। ताकि भविष्यकी संतानके लिये हम उपयोगी हों। और वर्तमानके जीवनको भी सफल व मौल्यवान् बना सकें। जीवन संग्रामका क्षेत्र है। इससे शत्रुओंको भगानेके लिये सदाचरण एक ऐसा तीक्ष्ण हथियार है कि फिर उसके आगे शत्रुओंका टिकना कठिन हो जाता है। यह शस्त्र न केवल शत्रुओंको ही नष्ट करता है किंतु जिसके पास यह होता है उसमें शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक और आत्मिक बल भी उत्पन्न कर देता है। उसका शरीर तेजोमय हो जाता है। उसका कथन प्रामाणिक और प्रभावशाली माना जाता है। उसके निश्चय अखंड और दृढ़ होते हैं। उसे दुःख सता नहीं सकते और सुख मोहित नहीं करते हैं। वह सदा प्रसन्न, साहसी कर्मवीर और उत्साहके साथ कार्य करता दिखाई देता है। वह अपने जीवनके प्रत्येक कार्यको, करनेके पहिले शुभ और अशुभकी जांच करनेवाली कसोटीपर कसता है और जो कार्य शुभ होते हैं उनमें विना किसी ढीलके लग जाता और पूरा करके छोड़ता है। अशुभ क्रियाओंको छोड़कर शुभ क्रियाओंका करना ही उसकी दृष्टिसे सदाचरणकी व्याख्या होती है और इसी व्याख्यापरसे वह अपने कर्तव्य निश्चित करता है। वह किसीकी निंदा प्रशंसा-

के लिये नहीं ठहरता और न किसीकी परवाह करता है। वह अपने कृत्योंको शुभ समझता और उनकी पूर्तिमें दृढ़ व अविश्रांत परिश्रम करता है। ऐसे ही शुभ कृत्योंके समुदायसे उसके जीवन-का चरित्रगठन होता है और इसे ही सच्चरित्रता कहते हैं। प्रत्येक मनुष्यको इसी सच्चरित्रताकी आवश्यकता है। सच्चरित्रता मनुष्यके उन छोटे २ कृत्योंका समूह है जो सत्य, परिश्रम, शील, परोप-कार, दया, दान, निर्भयता, आत्मावलंबन, मितव्यय, आत्माभि-मान, अन्याय-प्रतीकार, कर्तव्य-पालन, आश्रित-रक्षण, कुटुम्ब-व्यवहार-पालन, सामाजिक-जीवन, शांति, प्रेम आदिसे बना करते हैं। दूसरे शब्दोंमें यों भी कह सकते हैं कि सच्चरित्रता—सदाचरण—चरित्रगठन एक समुद्र है जिसमें वे सब कृत्यों रूपी नदियाँ आकर मिला करती हैं जिनसे इस संसारकी शांति स्थायी बनी रह सकती हो और जीवन-कलह उत्पन्न न हो सके। जिस तरह एक रस्सीमें बँधे हुए हजारों मनुष्योंके बीचसे यदि एक प्राणी भी प्रथक् हो जाय तो उसकी श्रृंखला दूर हो जाती है और एक छोरसे दूसरे छोर तकके बँधे हुए मनुष्योंको जोरसे अथवा धीरसे उसके प्रथक् होनेके झटके—धक्के सहन करना पड़ते हैं, उसी प्रकार इस पृथ्वीतलके मनुष्य एक ही हित संबंध—सुखकी चाह—से बँधे हुए हैं, यदि इस चाँहमेंसे कोई निकलना चाँहता है अथवा दुराचरणोंके कारण उसे बलात् निकलना पड़ता है तो उसके निकलनेके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रीतिसे सबको धक्के लगते हैं। और अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। जिस एक व्यक्तिके दुराचरणोंसे संसारकी शांति डाँबाडोल हो उसके पापका हिसाब नहीं लगाया जा सकता। अतएव हमारा—प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि वे इस पापसे बचनेके लिये सदाचरणी बनें।

आचरण और आदतोंका संबंध।

मनुष्योंकी आदतोंके समूहका नाम ही चारित्र है। मनुष्य जैसी आदतोंके वश होता है वेसा ही उसका चारित्र होता है। यदि आदतें अच्छी होती हैं तो चारित्र भी शुद्ध होता है। यदि आदतें बुरी हुई तो चारित्र भी बुरा ही होता है इसलिये प्रत्येक आदत डालनेके पहिले उसके भले बुरेका विचार कर लेना उचित है। आदतें डालनेमें जितनी सरलता होती है उतनी ही उन्हें छुड़ानेमें कठिनता होती है। वे मनुष्यका स्वभाव बन जाया करती हैं। और फिर उन्हींपर मनुष्यकी भलाई बुराई अवलंबित रहती है। बाल्यावस्थाके आचरणोंमें भलाई बुराई कुछ नहीं होती क्योंकि उस समय बालक किसी आदतके आधीन नहीं रहता। उसकी बुराईमें भी भोलापन व सरलता दिखलाई पड़ती है, परन्तु धीरे धीरे ज्यों ज्यों वहा बड़ा होता है और आदतोंके आधीन होता जाता है त्यों त्यों उसका चरित्र शुभरूप या अशुभरूपमें बंधने लगता है और फिर अपनी आदतोंके कारण या तो सदाचरणी बन जाता है या दुराचरणी। यद्यपि आत्मा बलवान् है, परंतु वह जिन इन्द्रियोंके नेत्र, स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्रके वश हो रहा है वे इन्द्रियाँ उसे अपनी ओर आकर्षित कर सांसारिक झगड़ोंमें फँसाती हैं। नेत्र उसे विवश करते हैं कि वह सुंदर पदार्थोंके देखनेमें ही अपने जीवनको व्यतीत करे। श्रोत्र उसे सुंदर २ रागरागिनियें अथवा प्रिय वचन सुननेके लिये अनुरोध करते हैं। इसी तरह अन्यान्य इन्द्रियाँ भी अपने२ कार्योंकी ओर झुकाती

हैं और आत्माको उन्हीं कार्योंमें मस्त रखती हैं। निर्बल आत्माएँ इन इन्द्रियोंके आधीन हो जाया करती हैं । मध्यम स्थितिकी आत्माएँ पाँचोंमेंसे एक-दोके ही वश होती हैं। परंतु बलवान् आत्माएँ इनके आधीन न होकर अपने कर्तव्य कर्मको करनेमें इनका उपयोग करती हैं । इन्द्रियोंके आधीन होकर जो उनके अनुकूल अपनी आदतें डाल लेते हैं उनमें और गुलामोंमें कुछ भी अंतर नहीं होता । जिस तरह गुलामोंका स्वामी गुलामोंसे मनचाहा काम कराता और उन्हें अपने आधीन रखता है उसी प्रकार मनुष्य भी आदतोंके गुलाम हो जाया करते हैं और उन्हीं आदतोंके पूरे करनेमें अपने आपकी बलि देते हैं । आदतें डालते समय बड़ी मीठी लगती हैं परंतु उनका परिणाम बड़ा भयंकर—जहरीला हुआ करता है । निर्बल आत्माएँ किसी कामको करनेके पहिले यह नहीं विचारतीं कि इसका परिणाम क्या होगा ? और इसका हमपर क्या प्रभाव पड़ेगा ! वे उस कार्यकी क्षणिक मोहकतामें भूल जातीं और उसे कर बैठती हैं। धीरे धीरे वे कार्य ही मनुष्यकी आदतके रूपमें परिवर्तन हो जाते हैं और फिर मनुष्यको मनमाना नचाते हैं। कोई कोई निर्बल आत्माएँ यह जानती हुई भी कि असुक कार्यका परिणाम अच्छा नहीं है, किसी प्रसंगवश उसे कर बैठती हैं और प्रण कर लेती हैं कि इस प्रसंगके टल जानेपर फिर उसे नहीं करेंगी। परंतु प्रसंग टल जाता है और वह कार्य उनकी आदतोंमें शुमार हो जाता है । उसके भयंकर परिणामोंसे उन्हें दुःख भी उठाना पड़ता है। और फिर उसके छोड़नेके लिये प्रण करती हैं, नियम लेती हैं । आत्मसंयम करनेका बल करती हैं परंतु आदत पड़ जानेपर उसका छूटना कठिन

हो जाता है। उनके सब प्रण और सब नियम निरर्थक होते हैं। आदत भयंकर सर्प है जिसके काटे हुए नहीं जी सकते।

कई लोग अच्छी आदतोंकी बहुत सराहना करते हैं। और बुरी आदतोंकी अपेक्षा अच्छी आदतें कई अंशोंमें सराहनीय हैं भी, तो भी हम उनकी सर्वथा प्रशंसा नहीं कर सकते। क्योंकि शुभ हो या अशुभ, आदत पड़ जानेपर सामायिक बल नहीं रहने पाता। किस समय किस व्यवहारसे हमारे जीवनकी गाड़ीको हम खींच सकेंगे? यह निश्चय नहीं कहा जा सकता। संभव है कि समय पड़नेपर हमारी शुभ आदतें ही हमारी गाड़ीको अगाड़ी न बढ़ने दें और वहीं हमें हमारा जीवन पूर्ण करना पड़े, अर्थात् हम उच्च ध्येयको न पहुंच सकें। इसलिये जहाँतक हो हमें किसी भी आदतकी, चाहें शुभ हो या अशुभ, बलि नहीं होना चाहिये। तो भी अशुभ आदतोंकी अपेक्षा शुभ आदतोंका अभ्यास डालना अच्छा ही है।

वृद्धोंकी अपेक्षा बालकों और युवकोंमें आदतें बहुत शीघ्रतासे पड़ जाया करती हैं क्योंकि उनपर संगतिका असर बहुत ही शीघ्र होता है। उस समय उनकी आत्मामें भी बल नहीं होता, ज्ञानकी अधिकता नहीं होती, अनुभवशून्य होते हैं। अतएव ज्यों ही वे अपने साथियोंको देखते हैं कि उनका अनुकरण करनेमें लग जाते हैं और फिर उन अनुकरण किये हुए कार्योंको अपनी आदतें बना लेते हैं। जिस कार्यके बिना किये मनमें संतोष नहीं होता, समझ लो कि वह कार्य अब हमारी आदतोंमें दाखिल हो गया है। कई विद्यार्थी जो

तमाखू पीते और मादक पदार्थोंका सेवन करते दिखलाई देते हैं, उसका कारण क्या है? यही कि पहिले पहिल उन्होंने अपने साथियोंका इस विषयमें अनुकरण किया था। उस समय उन्हें यह मालूम भी नहीं था कि ये कार्य एक दिन हमारी अपरिहार्य आदतें बन जायगे और फिर इनका छोड़ना भी कठिन होगा। उस समय वे इन कार्योंको एक खेल समझते थे। वे ही खेल आज उनके जीवन मरणके प्रश्नोंमें दाखिल हुए दिखलाई पड़ते हैं।

न केवल तमाखू पीना आदि ही आदतोंमें शामिल हैं किंतु माथेमें तैल डालना, फेशनेबिल बनना, भपकेदार कपड़े पहिनना, बाल रखाना आदि वे बातें जिनके बिना किये हमारा मन दुःखी और अप्रगट रीतिसे असंतुष्ट रहता है व अपने तईं लज्जा मालूम होती है, हमारी आदतोंमें शुमार हैं और फिर भविष्यमें इनसे हानि होनेकी संभावना रहती है। जिन मनुष्योंकी ऐसी आदतें पड़ जाती हैं उन्हें अपनी गृहस्थितिकी तरफ उपेक्षा करना पड़ती है। यदि उनकी स्थिति अच्छी है तो वे जितनी उसके बढ़ानेकी परवाह नहीं करते जितनी कि अपनी आदतोंमें खर्च करनेकी करते हैं और अंतमें जाकर दरिद्रताका दुःख उठाते हैं। यदि स्थिति अच्छी नहीं हुई तो फिर वे बड़े भारी संकटमें पड़जाते हैं। उनका मन असंतुष्ट रहता है। उनका समय रात दिन चिंतामें अथवा अपने साथी मित्रोंको ठगनेमें व्यतीत होता है। वे अपनी दुःस्थितिके लिये मात पिता आदि कुटुम्बी जनोंको दोषी ठहराते हैं, उन्हें छोड़कर भाग जाते हैं, रोते हैं, कुढ़ते कलपते हैं। इस तरह अपने घरको अशान्तिका केन्द्र बना डालते हैं। परंतु वे यह नहीं

समझते कि यह दोष हमारा—हमारी आदतोंका है जिनके कारण हम अपनी स्थितिपर असंतुष्ट हो रहे हैं । यदि आज ये आदतें नहीं पड़ी होतीं तो हमें किसी भी बातकी आवश्यकता नहीं थी । सादगीसे जीवनका व्यवहार चलाया जा सकता था । सार यह है कि आदतें किसी भी हालतमें अच्छी नहीं कही जातीं । सदाचरणी मनुष्य वही है और उसी मनुष्यका चरित्र गठन हुआ समझना चाहिये जो आदतोंका गुलाम नहीं होता और समयको देखकर शुभ कार्योंसे अपने जीवनके रथको खींचता हुआ ले जाता है, जिसके कार्योंसे संसारके किसी भी प्राणीको, विशेष कर उसकी समाजको—मानव समाजको उसके कार्योंकी टक्कर नहीं खाना पड़ती । अतएव मनुष्यमात्रका कर्तव्य है कि वे आदतोंके गुलाम न होकर आदतोंको गुलाम बनावें और समयानुकूल उनसे कार्य लें । अपने चरित्रका मूल्य आदतोंपर अवलंबित न होने दें किंतु चरित्रपरसे आदतोंका मूल्य निर्धारित करनेका समय दें ।

ऋण ।

आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये दूसरोंसे जो वस्तु कुछ नियत समयमें वापिस कर देनेकी शर्तपर ली जाती है उसे ऋण कहते हैं । ऋण न केवल रुपयों पैसोंका ही होता है किन्तु प्रत्येक वस्तुका जो हम दूसरोंसे वापिस करदेनेकी शर्तपर लेते हैं, होता है । ऋण तीन प्रकारका होता है । एक अनुत्पादक ऋण, दूसरा उत्पादक ऋण, तीसरा साधारण ऋण । अनुत्पादक ऋण वह होता है जो

भोग-विलास, विवाह-शादी आदिमें खर्च करनेके लिये लिया जाता है क्योंकि इन कार्योंमें खर्च किया हुआ ऋण समूल ही नष्ट होता है। दूसरा उत्पादक ऋण वह होता है जो व्यापारके लिये अथवा ऐसे कार्योंमें लगानेके लिये लिया जाता है जिनसे कि लाभ होनेकी आशा रहती है। तीसरा साधारण ऋण उसे कहते हैं जो कुछ समयके लिये किसी विशेष और अपरिहार्य आवश्यकताकी पूर्तिके लिये लिया जाता है। जैसे कि घरमें आटा न रहनेपर गेहूँ पिसकर आवे तबतक कुछ समयके लिये अड़ोसी-पड़ोसियोंसे ले लेना। इन तीनों प्रकारके ऋण एक दृष्टिसे तो अच्छे नहीं हैं, परंतु दूसरी दृष्टिसे तीनों ऋणोंमें अनुत्पादक ऋण जघन्य और उत्पादक ऋण मध्यम श्रेणीका है। साधारण ऋणको तो न उत्तम ही कह सकते हैं क्योंकि ऋणमें उत्तमता है ही नहीं, और न मध्यम ही, क्योंकि यदि किसी समय विशेषपर इस ऋणद्वारा कार्य निकाल भी लिया जाय तो वह कुछ हानिकारक नहीं है। कई विद्वान् मनुष्योंने ऋणको सर्वथा ही खराब बताया है, परंतु हमारी दृष्टिमें सर्वथा खराब ऋण अनुत्पादक ऋणके सिवाय दूसरे नहीं हो सकते क्योंकि उससे कोई लाभकी आशा नहीं रहती। वह समूल ही नष्ट हो जाता है और जब वह नष्ट हो जाता है तब उसे चुकानेमें—अदा करनेमें मनुष्योंका चित्त डाँवाडोल होने लगता है। उस समय उन्हें बेईमानी सूझती है, वे ऐसे मार्ग निकालते हैं जिससे वह ऋण चुकाना न पड़े। परंतु उत्पादक ऋणमें यह बात नहीं होती। यदि ऋण बुरा समझकर संसारसे उठा दिया जाय तो हमें संदेह है कि संसा-

रके व्यवहार आगे चल सकेंगे या नहीं । उत्पादक ऋण व्यापारका प्राण है। प्रत्येक प्रकारके वे व्यापार जिनसे लाभ होनेकी संभावना है ऋणपर अवलंबित रहते हैं। विना ऋणके व्यापारियोंका, कृषकोंका और राजकारबारियोंका काम क्षणभर भी नहीं चल सकता और न इस ऋणसे मनुष्योंक उन नैतिक गुणोंमें बाधा ही आती है जो कि ऋण होनेसे बतलाई जाती है । प्रत्येक इज्जतदार और व्यापारके तत्त्वोंके जाननेवाला मनुष्य ऋणको वायदेपर चुकाता है । उसके लिये वायदा-खिलाफी मरणके समान होती है। वह अपना व्यवहार सच्चा रखता है और ऋण चुकानेके लि सदा तैयार रहता है। इसलिये उत्पादक ऋण नैतिक दृष्टिसे खराब नहीं हो सकता। हाँ यदि उत्पादक ऋण अनुत्पादककी श्रेणीमें चला जाय तो फिर वह नैतिक दृष्टिसे गिर जाता है। जैसे कि कईएक मनुष्य व्यापारके खूब चलनेपर शक्तिसे अधिक खर्च भोगविलासादिमें कर डालते हैं और फिर उन्हें ऋण चुकाना कठिन हो जाता है। ऐसे मनुष्योंको नीच समझना चाहिये और यह उदाहरण मनुष्योंहीकी नीचता प्रगट करता है न कि ऋणकी। मनुष्योंको अपने भोगविलासमें पुत्रादिकी विवाह-शादीमें कितना भी आवश्यकीय कार्य हो तो भी ऋणकी वस्तुको खच नहीं करना चाहिये। और न इन कार्योंके लिये ऋण ही लेना चाहिये। क्योंकि इन कार्योंके लिये ऋण लेनेसे मनुष्य नैतिक दृष्टिसे पतित हो जाता है । ऋणसे मनुष्य असत्यवादी, लोभी, दूसरोंकी वस्तुका अपहारी करनेवाला बनता है। प्रायः उसकी यही इच्छा रहती है कि यह ऋण मुझे न देना पड़े । वह ऐसे मार्ग ढूंढता है जिनसे

ऋण भी चुक जाय और घरमेंसे छदाम भी न देना पड़े। वायदा-खिलाफी उसके जीवनका मंत्र होता है। वह जालसाजी करनेतकको नहीं हिचकता। धीरे धीरे उसे निर्लज्जता भी आ दबाती है। सारांश यह है कि अनुत्पादक ऋण लेना मनुष्य जीवनका खून करना है। इसी तरह उत्पादक ऋणको भी अनुत्पादक बनानेवाले मनुष्य नीच श्रेणीके समझना चाहिये। प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि वे यदि व्यापारके लिये ऋण लें तो उसे उस व्यापार-हीमें लगावें जिससे लाभकी आशा हो और उसे समयपर चुका देने-के लिये सदा तैयार रहें। यदि व्यापारके लिये किया हुआ ऋण ऐसे कार्यमें लगा दिया जाय जिससे लाभकी कोई आशा न हो अथवा अपने खर्चमें उसका उपयोग कर लिया जाय तो इससे भवि-ष्यमें मनुष्यका पतन हो जाना संभव रहता है। आशाओंपर ऋण-का उपयोग नहीं करना चाहिये। ऋणका उपयोग तभी करना उचित है जब कि लाभकी पूर्ण संभावना हो अथवा उसके नष्ट होजानेपर घरसे चुका देनेकी शक्ति हो। विना इस प्रकारके ऋण लेना उचित नहीं है। उससे बड़ी बड़ी हानियाँ होती हैं और बलात् नैतिक पतन होता है। दुःख उठाने पड़ते हैं। इस प्रकारके ऋणसे न केवल नैतिक हानि ही होती है किंतु आर्थिक हानि भी उठानी पड़ती है। व्याजपर व्याज जब देना पड़ता है तब बड़े बड़े ईमानदारोंका ईमान भी डुलने लगता है वे भी उसमें कुछ कम देनेकी नियत कर लेते हैं। ऋण लेकर जो मनुष्य अपने घरके खर्च चलाता है-भोग-विलासमें खर्च करता है अथवा संतानकी व अपनी विवाह शादी करता है उसे मनुष्य कहना मनुष्यताका अपमान करना है।

उसे आदतोंका गुलाम और कमज़ोर समझना चाहिये। ऐसे मनुष्य मनुष्यतासे रहित होते हैं। और अपने जीवनको नष्ट कर डालते हैं। कोई आवश्यकता नहीं कि ऋण लेकर खर्च किया जाय। भूखे सो रहना अच्छा है परंतु ऋण लेना अच्छा नहीं, यदि हमारी शक्ति उसे चुकानेमें असमर्थ है। भूखे रहकर दिन काटा जा सकता है पर ऋणके भारसे जीवन कटना कठिन हो जाता है। ऐसे सेकड़ों मनुष्योंका नाम लिया जा सकता है जो ऋणके कारण अपने प्राण खो बैठे हैं। ऋणका भार हिमाचल विंध्याचल पर्वतोंसे भी अधिक वजनदार है। ऋण पूअरके कांटेसे भी अधिक तीक्ष्ण कांटा है जिसे ज्यों ज्यों निकालो त्यों त्यों भीतर घुसता है। ऋण सूझतेको अंधा, सुनतेको बहिरा, सच्चेको झूंठा, खानेको भूँखा और शक्तिशालीको अशक्त बना देता है। ऋणसे मनुष्य चिंताकी शिकार होता है और चिंता करते करते चितापर भी जा लेटता है। ऋणी मनुष्यको अहर्निश सिवाय उस ऋणके और कुछ सूझता ही नहीं। वह ऋणके कारण घरमें छुपता फिरता है—तगाज़ेके डरसे घरसे बाहर नहीं निकलता समाजमें मुँह नहीं बतलाता, व्यापार करना बंद कर देता है अर्थात् अनुत्पादक ऋण मनुष्य जीवनको बड़ी बुरी तरहसे नष्ट करता है। अतएव मनुष्यका कर्तव्य है कि वह जहाँ तक होसके ऋणके फंदेमें विशेषकर अनुत्पादक ऋणके फंदेमें न फँसे और अपनी शक्तिके अनुसार विना अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाये गृहकार्योंकी पूर्ति करै। जैसा कि ऊपर कह जा चुका है तदनुसार भूँख सो रहना अच्छा है—उस अवस्थामें दिन व्यतीत किये जा सकते हैं परंतु ऋणके भारसे जीवन व्यतीत करना कठिन हो जाता है।

मितव्ययता

आमदनीसे कम खर्च करनेको मितव्ययता कहते हैं। मितव्ययता जीवनको सुखी बनानेकी कुजी है । क्योंकि मनुष्योंको संसारमें रहनेपर बात बातमें धनकी आवश्यकता होती है । बिना धनके एक पद भी आगे बढ़ना कठिन हो जाता है इसके लिये आवश्यकीय है कि धन उत्पादन किया जाय और संग्रह किया जाय । मितव्ययता धनका संग्रह कराती है । जीवनमें किस समय कोनसा प्रसंग उपस्थित होगा और उसमें धनकी कितनी आवश्यकता होगी ? यह कोई नहीं कह सकता। ऐसे प्रसंगोंके लिये धनका संचय कर रखनेसे जीवन सुखपूर्वक कट जा सकता है । यदि धन न हो तो उस समयके दुःखोंसे मनुष्य जजरित हो जाते हैं और उन्हें जीवनसे हाथ धोना पड़ता है । इसीलिये मितव्ययता मनुष्यका आवश्यकीय गुण है । कई मनुष्योंकी यह आदत हुआ करती है कि जो हाथमें आया उसे खर्च कर डालते हैं । भविष्यकी उन्हें चिंता ही नहीं रहती । वे कहा करते हैं कि " हाल तो आरामसे गुजरती है आगवतकी खुदा जाने " । परंतु ऐसोंको आगवतमें—भविष्यमें इतने दुःख उठाने पड़ते हैं जिनकी सीमा नहीं। कई लक्षाधीश और कोट्याधीश धूलमें मिल जाते हैं। क्योंकि धनके मदमें आकर भोगविलासमें इतना खर्च कर डालते हैं कि उन्हें वह उनकी आयसे बहुत अधिक हो जाता है । और खर्चका स्वभाव है कि जो वह बढ़ा कि फिर उसका घटाना कठिन होता है। खर्च घटता नहीं, आय बढ़ती नहीं, संचित धन नष्ट होता जाता है।

इस तरह एक दिन वे दरिद्र होकर इधर उधर मुँह ताकते फिरते हैं। उस समय तो वे धनको हाथका मैल समझते हैं। पर इस समय--दरिद्र होनेपर उन्हें मालूम होता है कि उसका महत्त्व क्या है ?। कई लोग अधिक खर्च करना अपनी उदारता समझते हैं और इसमें अपना बड़प्पन समझते हैं। पर विद्वान्-समझदार मनुष्य अधिक व्यय करनेवालोंको—फिर चाहें वह खर्च शुभ कार्यमें ही क्यों न किया गया हो—फिजूलखर्च और मूर्ख समझते हैं। क्योंकि पशुसे मनुष्यमें यही विशेषता है कि वह प्रत्येक कार्यके परिणामको सोच सकता है। यदि मनुष्य अपने इस गुणसे काम न ले—परिणामको न सोचे और कार्य करे तो उसे कोन समझदार मनुष्य कहेगा। वह तो पशुहीकी श्रेणिमें है जिसे अपने भविष्यकी चिंता नहीं। भविष्यकी चिंता न कर जो वर्तमानकी उदारता प्रगट करता है वह उसकी उदारता नहीं है उसे भी दुर्गुण ही समझना चाहिये। उदारताकी सीमा अपनी आयपर निश्चित करना मनुष्यका धर्म है। कमसे कम भविष्यके लिये अपनी आयमेंसे एक चतुर्थांश बचा लेना चाहिये। इससे कम नहीं। आयसे कम खर्च करना लोभ नहीं कहा जा सकता। लोभमें और इसमें जमीन आसमानका अंतर है। लोभी मनुष्य तो खर्च ही नहीं करना चाहता। वह चाहता है कि उसकी सब आय ज्योंकी त्यों बची रहे और अकल्पित रीतिसे उसका खर्च चल जाय तो बहुत अच्छा हो। लोभी मनुष्य बहुत लोलुपी हो जाता है। वह अपने प्रत्येक व्ययमें कमी करनेकी कोशिश यहाँ तक करता है कि उससे उसे शारीरिक कष्ट उठाना पड़ते हैं। पर वह उन कष्टोंकी भी

परवाह नहीं करता। इस प्रकारका व्यवहार दुर्गुण है अतएव लोभी मत बनो। लोभी बनना पाप है। मितव्ययी बनो। किफायत-सारीसे अपना खर्च चलाओ। मितव्ययी बनना भला है। इससे मनःसंयम और शरीरसंयम दोनों होते हैं। आवश्यकताएं घटानी पड़ती हैं। आयसे अधिक खर्च न करनेसे मनकी चंचलता वश होती है। वह अधिक नहीं दोड़ने पाती। शरीरकी भी आवश्य-कताएँ परिमित हो जाती हैं। कैसी भी अच्छी स्थिति हो--भले ही घरमें करोड़ोंका माल रखा हो परंतु खर्च वर्तमानकी आयपरसे ही करना चाहिये। संचित धनको विना प्रसंगके हाथ लगाना पाप है उसपर तुम्हारा हक़ नहीं। तुम्हारा अधिकार आयपर है। आयपरसे ही अपना खर्च चलाओ। हाँ यदि तुम्हारा इतना अधिक संचित धन हो गया है कि उसमेंसे कुछ खर्च कर देनेपर भी वह भविष्यके लिये यथेष्ट बचा रह सकता है तो खुशीसे उसे दानधर्ममें खर्च करो। उससे जगतकी सेवाके कार्य करो। ऐसी अवस्थामें यदि संचित धनका सदुपयोग नहीं किया जाय तो समझना चाहिये तुम्हें लोभने दबाया है। लोभके बलि कभी न होना चाहिये। किंतु शक्तिके अनुसार सदा उदार रहनेमें ही शोभा है। शक्तिसे अधिक उदार होजाना भी दुर्गुण है। यद्यपि कई ऐसे उदार पुरुष होगये हैं जिन्होंने धनकी कुछ परवाह नहीं की और वे आज मनुष्य समाजमें पूज्य गिने जा रहे हैं। परंतु उन्हें अपवाद समझना चाहिये। सबोंको उनका इस प्रकार अनुकरण करना अनुचित है क्योंकि ऐसे पुरुषोंमें एक शक्तिविशेष होती है जिससे उनका यह दुर्गुण दब जाता है और उन्हें कष्ट नहीं उठाना पड़ते। वह शक्ति सबमें नहीं होती इसलिये उन अपवादरूप महा-

पुरुषोंका अनुकरण न कर अपनी आयमेंसे कमसे कम चतुर्थांश बचाना ही चाहिये। इतना न बचाकर खर्च करना व्यर्थ व्ययकी श्रेणीमें चला जाता है। अर्थात् उस अधिक खर्चको व्यर्थ व्यय समझना चाहिये। कई मनुष्योंकी यह आदत पड़ जाती है कि वे अपनी आयकी ओर दुर्लक्ष्य कर खर्च कर बैठते हैं। भविष्यमें उन्हें बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती है। ऋण लेना पड़ता है। चिंताके कारण शरीर कृश हो जाता है। और जीवन भारभूत होजाता है। इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर—भविष्यके परिणामोंको सोचकर प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह अपनी आमदनीसे कम खर्च करनेका अभ्यास करे। यदि उसकी आदत अधिक खर्च करनेकी है तो उसे रोके। यद्यपि पहिले पहिल उसे इसमें कठिनाई उपस्थित होगी। मन चलेगा। इच्छाएँ दौड़ेंगी और उस मनुष्यको अपनी पूर्तिके लिये विवश करेंगी पर उन इच्छाओंका उस समय दमन करना ही लाभकारी है। यदि लगातार कुछ समय तक दमन की जायँ तो फिर इच्छाएँ स्वयं नष्ट हो जावेंगी। इच्छाओंपर वह मनुष्य जय प्राप्त कर लेगा। और अपने व्ययको परिमित भी कर सकेगा। जिससे कि भविष्यकी आवश्यकताओंके लिये धनका संचय होगा। मितव्ययी बनानेमें आय-व्यय लिखनेकी पुस्तक भी बड़ा काम देती है। क्योंकि जब मनुष्य उसमें अपनी आय और अपने व्ययको लिखता है तब वह उन दोनोंकी समीक्षा करता है और यदि कोई फिजूल खर्च हुआ हो तो उसे आगेसे न करनेका संकल्प करता है। अतएव ऐसी पुस्तकका उपयोग करना भी आवश्यकीय है ताकि मनुष्य मितव्ययी हो सके।

स्वच्छता ।

शरीरको नीरोग रखनेको व पवित्र जीवनके लिये स्वच्छताकी बड़ी आवश्यकता है। स्वच्छता दो प्रकारकी होती है एक तो बाह्य दूसरी आंतरिक। दोनों प्रकारकी स्वच्छताओंका मानवीय जीवनपर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। इसलिये मनसे और शरीरसे स्वच्छ रहना मनुष्यका कर्तव्य है। मनमें खोटे विचारोंको न आने देकर पवित्र विचार करना मानसिक अथवा आंतरिक स्वच्छता है। दुनियामें जहाँ तहाँ प्रायः ऐसे साधन बहुत मिलते हैं जिनसे मन अपवित्र हो। ऐसे साधनको न मिलाकर अथवा मिलनेसे उनके द्वारा मनको विकृत नहीं करना चाहिये। क्योंकि एक वार कोई भी विचार यदि मनमें जम जाय तो फिर उसका निकालना कठिन हो जाता है। मन संबंधी यह नियम है कि किसी विषयपर यदि वह एक वार किंचित् भी विचार करले तो फिर उसपर वारंवार वह विचार करता है और अंतमें उस विचारको पकड़कर तदनुसार कार्य करनेके लिये मनुष्यको बाध्य करता है। मन संबंधी इस नियमको न जाननेके कारण बहुतसे लोग भूलकर बैठते हैं और हरेक कार्यके पीछे मनको दौड़ा देते हैं। परिणाम यह होता है कि वह उन कार्योंको अपनेमें स्थान दे देता है। बस फिर उसके अनुसार कार्य करनेके लिये मनुष्यको वाध्य होना पड़ता है। अतएव प्रत्येक कार्यपर विचार करतेही पहिले उसकी भलाई बुराईका विचार करो। यदि वह काय भला हो तो उसके लिये अपने मनका स्थान खुला रखो। उसे यथेच्छ आने दो और मनको खूब उसपर

विचार करने दो । भली बातका मनमें जमजाना ही अच्छा है। पर यदि आपको मालूम हो जाय कि अमुक विचार बुरा है तो फिर उसे उठते ही रोक दो । संभव है कि रोकनेपर वह बार बार आवेगा, तुम्हें पराजित होना पड़ेगा । और एक योद्धासे लड़नेके समान उस विचारको मनसे हटानेके लिये उससे लड़ना पड़ेगा । तुम मनको दूसरी जगह लगाने, दूसरे विचारोंके सोचने, अन्य ध्यान करने, पुस्तक पढ़नेमें प्रवृत्त करोगे और चाहोगे कि इन पैंचोंसे वह विचार पराजित हो जाय, पर तब भी वह नहीं मानेगा । बार बार मनको टक्कर दे उसे आन्दोलित करेगा । परंतु तुम अपने कार्योंसे न हटो मनको उस विचारसे—खोटे विचारसे पवित्र रखनेके लिये पैंचोंको लड़ाते रहो—मनको दूसरी ओर लगाओ। इस तरह निरंतरके प्रयत्नोंसे अंतमें जाकर विजय होगी और फिर वह विचार सदाके लिये मनसे छूट जायगा प्रत्युत उसके विरोधी भले विचार स्थान पा जाँयगे । पर यदि अपने पैंचोंको छोड़ बैठे-बुरे विचारोंकी टक्करको न झेलकर उसे मनमें स्थान दे दिया तो एक दिन वही बुरा विचार आदतके रूपमें परिणत होकर चरित्रको नष्ट भ्रष्ट कर देगा । इसलिये मानसिक शास्त्रका उक्त नियम जानकर मनके व्यापार-पर अपना अंकुश रखना चाहिये और उसे भलाईकी ओर प्रवृत्त करना चाहिये । भले विचारोंसे, भले संस्कारोंसे और भले निश्चयोंसे उसे पवित्र बनाना चाहिये । ताकि हमारा आचरण भी शुद्ध हो और शरीर भी नीरोग रहे। शरीरको नीरोग रखनेके लिये मानसिक पवित्रताकी बड़ी आवश्यकता है । जितना लाभ औषधि आदिसे होता है उससे कई गुणा अधिक लाभ मानसिक पवित्रतासे होता

है । जो रोग बड़ी बड़ी औषधियोंसे नहीं जाते वे धूलकी अथवा राखकी चुटकीसे चले जाते हैं क्योंकि उन धूल व राखकी चुटकियोंमें मानसिक विश्वासकी औषधि मिली हुई होती है । भारतकी तो यह प्राचीन पद्धति है कि पहिले वैद्य लोग रोगीपर अपना विश्वास उत्पन्न करते हैं । पीछे औषधि देते हैं तव कहीं उनपर औषधि कार्यकारी होती है । रोगीमें धैर्य, साहस, उत्साह आदि उत्पन्न करनेका कारण भी यही है कि उनसे रोगके परिणामपर अप्रत्यक्ष न दिखाई देनेवाला लाभ होता है । अमेरीका आदि देशोंमें तो कई डाक्टर मानसिक पवित्रतासे ही रोगीको आराम करते हैं । यदि रोगके घटनेपर भी रोगीको यह विश्वास हो कि मेरी बीमारी घट नहीं रही तो यह निःसंशय है कि वह रोग नहीं घटेगा ? इसी तरह यदि वह दृढ़ निश्चय करले कि रोग कम हो रहा है तो एक दिन वह निःशेष हो जायगा । इन दो बातोंसे यह साफ तौरसे प्रगट होता है कि मनके विचारोंका परिणाम शारीरिक स्वास्थ्यपर अवश्य पड़ता है । किसी घटनाके उपस्थित होनेपर यदि मनमें दुःख किया जाय तो मन दुःखी होता है शरीर निर्बल—उत्साह विहीन हो जाता है । और बड़ा दुःख होता है । किसी कार्यमें चित्त नहीं लगेगा । और ऐसा मालुम ही होता है मानो बड़े भारी बोझसे दवे हों । इसी तरह यदि उस घटनापर विशेष लक्ष्य न देकर मनमें उस संबंधी विचार उपेक्षासे किये जांय--कुछ अधिक दुःख न किया जाय-दुःख होनेपर उसके विरोधी विचारोंसे मन परिपक्क किया जाय तो वह घटना विशेष दुःखकारी न होकर एक साधारणसी प्रतीत होती है और किसी प्राकरका भी दुःख नहीं होता । खोटे विचारोंसे मनमें अशांति होती

है । एक प्रकारकी अग्नि जलती है जिससे स्वास्थ्यसंपत्तिका हवन करना पड़ता है । क्योंकि आत्मा उन खोटे विचारोंको सहन नहीं करती वह उनकी प्रतिपालना करनेमें आनाकानी करती है और यह जाननेके कारण कि मेरे विचार अपवित्र हैं उनके मुताबिक कार्य करनेसे जगतमें अपयश होगा अतएव उन्हें छुपानेका प्रयत्न करनेमें व्यग्र होना पड़ता है प्रगट होजानेपर उनसे अपनेको पृथक् सिद्ध करनेकी चिंता करना पड़ती हैं । दिन फिक्रमें ही व्यतीत होते हैं । इस तरह बुरे विचारोंकी अग्नि शरीरका नाश करदेती है। स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। रोग घरकर बैठते हैं। इसके विरुद्ध पवित्र विचार प्रगट करनेमें--प्रगट हो जानेमें किसी प्रकारका भय नहीं होता प्रत्युत आत्माभिमान होता है। मन प्रफुल्लित होता है। मनके प्रफुल्लित होनेसे शारीरिक स्वास्थ्याकी वृद्धि होती है। अतएव सदा शुद्ध—पवित्र—भले विचारोंसे मनकी स्वच्छता रखना चाहिये। इसी तरह बाह्य स्वच्छता भी आवश्यक है । बाह्य स्वच्छतासे शारीरिक, शारीरिक अगोंकी, घरकी, वस्त्रोंकी, गाँवकी, लड़कोंकी अड़ोसी-पड़ोसियोंकी स्वच्छता इष्ट है । बाह्य स्वच्छताका भी परिणाम मन और स्वास्थ्यपर होता है । बहुतसे रोग ऐसे हैं जो छोटे छोटे जंतुओंसे उत्पन्न होते हैं। और वे जंतु अस्वच्छ स्थानोंमें उत्पन्न होते हैं। प्लेग, हैजा, मलेरिया आदि रोगोंकी उन्नतिका कारण अस्वच्छता ही है । जिन स्थानोंमें, जिन घरोंमें और जिन पुरुषोंमें अस्वच्छता होती है उन्हें ही इन बीमारियोंका अधिक शिकार होना पड़ता है । यह बात अनुभवपरसे देखी गई है कि भारतमें हैजा, प्लेग आदि बीमारियाँ पहिले पहिल उन महल्लों और उन

मनुष्योंसे शुरू होती हैं जो सदा अस्वच्छतामें रहते हैं । कई मनुष्य अपने शरीरको बड़ा गंदा रखते हैं । महीनों तक दांत नहीं धोते। कई दिनों तक स्नान नहीं करते और करते हैं तो यों ही पानी ऊपरसे डाललेते हैं। न तो शरीरका मेल ही निकालते और न पानीहीको पोंछते हैं शरीरके जोड़ोंमें पानी भरता है जिससे दाद खाज आदि बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। स्त्रियोंके कपड़े महीनों तक नहीं धुलते और यदि धुलते हैं तो नाममात्रको ही। उनका मैलापन नहीं छूटता। जिससे कि कपड़ोंमें, जूँ आदि जंतु पड़ जाते हैं। यह सब अस्वच्छता रोगोंकी उत्पादक है। इससे बड़े बड़े भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इनके सिवाय शरीर, मुह आदि अंगोंकी व वस्त्रोंकी दुर्गंधसे मनमें घृणित भाव उत्पन्न होते हैं। और मन अस्वच्छ हो जाता है । इसी प्रकार घर, गाँव, अड़ोसीपड़ोसीकी स्वच्छता अस्वच्छताका परिणाम शरीरकी और मनकी स्वच्छतापर हुआ करता है। इसके लिये अपने घरकी सफाई करना चाहिये अड़ोसी व पड़ोसियोंको अस्वच्छताकी हानियाँ वतला कर समझाना चाहिये कि वे भी स्वच्छ रहें और गाँवको म्युनिसिपालिटी द्वारा व गाँवके जमींदार द्वारा स्वच्छ रखवाना चाहिये ।

स्वास्थ्य ।

प्रत्येक कार्यके लिये सबसे पहिले शारीरिक आरोग्यताकी आवश्यकता है । यदि शरीर ही आरोग्य न हो तो कोई भी कार्य नहीं बन सकता। जीवन भारभूत हो जाता है । रोगी मनुष्य रोगके दु:खोंके कारण जीनेसे मरना अच्छा समझने लगते हैं ।

और बड़े कष्टोंका उन्हें सामना करना पड़ता है । इसलिये स्वास्थ्य रक्षाकी ओर कभी दुर्लक्ष्य नहीं करना चाहिये । प्रत्येक कार्यमें स्वास्थ्य रक्षाका ध्यान पहिले रखनेसे वह कार्य भी बन जाता है और शरीर भी नीरोग रहता है। कई मनुष्य अपने कार्योंमे शारीरिक स्वास्थ्यका ध्यान नहीं रखते । वे यातो क्षणिक इन्द्रिय सुखोंमें मस्त होजाते हैं या किसी कार्यमें अपनी शक्तिका दुरुपयोग करते हैं । परिणाम यह होता है कि उन्हें भयंकर रोगोंका सामना करना पड़ता है । इन्द्रियसुखोंके कारण शारीरिक स्वास्थ्यकी ओर बे परवाही करदेनेवाले मनुष्य आत्मघाती हैं । क्योंकि वे दो तरह-से अपराध करते हैं एक अपराध तो उनका इन्द्रियोंके आधीन होजानेका है और दूसरा अपराध शरीरको रोगी बना डालनेका है । ऐसे मनुष्य जिव्हाके वश होकर भूखसे भी अधिक गरिष्ठ पदार्थ खाया करते हैं । नेत्रों और कानोंके वश होकर रात रात भर नाटक देखते गाना सुनते और भोगविलासोंमें मस्त रहते हैं। उन्हें सोना और खाना कुछ नहीं सूझता । कोई कोई व्यभिचारादि कार्योंमें इतने लिप्त हो जाते हैं कि फिर उन्हे अपना भविष्य नहीं सूझता । परिणाम यह होता है कि उनका भविष्य बड़ा भयंकर हो जाता है । वे असाध्य रोगोंसे आक्रमित रहते हैं । और उनके जीवनका अंत बड़ी बुरी तरहसे होता है इसी तरह जो मनुष्य अन्य कार्योंमें शारीरिक स्वास्थ्यकी अवहेलना करते हैं उन्हें भी अपने स्वास्थ्यसे हाथ धोना पड़ता है । इस लिये शारीरिक स्वास्थ्यके नियमोंका प्रत्येक कार्यमें ध्यान रखना चाहिये । स्वास्थ्यरक्षाके लिये आवश्यक है कि कमसे कम प्रतिदिन

छहसे सात घंटोंतक सोया जाय । इससे अधिक और कम सोनेमें हानि है । छोटे बालकोंके लिये आठ घंटोंतक सोनेका समय होना चाहिये। भोजनके व खानेके अन्य पदार्थ हलके और सादे होना चाहिये । तीक्ष्ण पदार्थ व उत्तेजक और मादक पदार्थोंको कभी काममें नहीं लाना चाहिये। मिर्च, तमाखू, भंग, गांजा आदि ऐसे ही पदार्थ हैं इनसे स्वास्थ्यकी बड़ी भारी हानि होती है । और आयु कम होती है । प्रायः पाठशालाओं—स्कूल कालिजोंके विद्यार्थियोंमें तमाखू खाने पीनेकी आदत हो जाया करती है। अमेरिकाके एक प्रसिद्ध डाक्टरका कहना है कि वर्तमान सभ्यताके समयमें असभ्यताका यदि कोई चिन्ह शेष रहा है तो वह तमाखूका उपयोग है, यह निश्चित है कि तमाखू पीनेवालोंमें प्रतिशत ८० से भी अधिक कफके रोगसे पीड़ित हो जाते हैं । खांसीका रोग तो इन्हें प्रायः हो ही जाता है । इसी तरह मिर्च आदि तीक्ष्ण पदार्थोंके उपयोगसे वीर्य दूषित हो जाता है और वीर्यजन्य बीमारियोंका शिकार होना पड़ता है । जिससे कि आयु क्षीण होती है । शरीरको मजबूत और पुष्ट बनाये रखनेके लिये वीर्यकी मजबूती और निरोगी रहनेकी आवश्यकता है । परंतु तीक्ष्ण पदार्थोंके उपयोगसे वीर्य नीरोग नहीं रहने पाता । दादाभाई नोरोजीसे एकवार पूछा गया था कि आपकी इतनी बड़ी दीर्घ आयु होनेका कारण क्या है? इसके उत्तरमें उन्होंने यही कहा था कि मैं सदा तीक्ष्ण और मादक पदार्थोंसे दूर रहा हूँ । इसलिये भोजनमें इन पदार्थोंका उपयोग जहाँतक हो सके कम करना चाहिये । भोजन नियमित और परमित—भूँखसे कम—करना चाहिये । जो मनुष्य बारबार कुछ न कुछ खाया ही करता है उसका

स्वास्थ्य कभी अच्छा नहीं रह सकता। बाजारमें बनी मिठाई आदि चीजोंको भी उपयोगमें लाना अनुचित है। इन पदार्थोंसे डाक्टर लोगोंके मतसे विशूचिका–हैजेकी बीमारी हो जानेकी संभावना रहती है। इसी तरह पानी मिला हुआ बाजारू दूध भी स्वास्थ्यको हानि पहुँचाता है। महिनेमें चारवार, दोवार, कमसे कम एकवार तो अवश्य उपवास कर डालना चाहिये। रोगोंको दूर करनेमें उपवास प्रकृतिका रामबाण उपाय है। उपवाससे शरीरमें स्फूर्ति उत्पन्न होती है। और विषैले पदार्थ जिनका समूह उदरमें जम जाता है भस्म हो जाते हैं। स्वास्थ्यके लिये प्रातःकाल–सूर्योदयसे पहिले उठना और उस समयकी वायुका सेवन करना बहुत लाभकारी है। इसी तरह शरीरसे कुछ न कुछ शक्तिके अनुसार काम लेते रहना चाहिये। ताकि शरीर आलशी न होने पावे। इसके लिये यही अच्छा है कि जिस समयका काम उसी समय कर लिया जाय। दूसरे वक्तके लिये न रखा जाय। इससे आलश्य भी नहीं आने पाता और समय भी बचता है आलश्यके समान शरीरका शत्रु दूसरा नहीं है। आलश्य मृत्युके समान है। और आलशी मनुष्य मुर्देके समान प्रत्येक मनुष्यको अपनी प्रकृतिके अनुसार ऋतुचर्या बना लेना चाहिये। और उनके अनुसार अपना व्यवहार रखना चाहिये। व अन्यान्य स्वास्थ्यरक्षाके नियमोंकी सदा पालना करना उचित है। शारीरिक स्वास्थ्यके साथ साथ मानसिक स्वास्थ्यकी ओर भी ध्यान रखना चाहिये। और मनपर बुरे परिणाम न होने पावें ऐसे कार्य करना चाहिये। स्वच्छताके पाठमें बताये अनुसार मनको सदा पवित्र विचारोंसे स्वस्थ रखना ही लाभप्रद है। इस प्रकार दोनों तरहके

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यका ध्यान रखना उचित है। कई पढ़े लिखे मनुष्य इतनी अधिक पढ़ाई करते हैं कि उन्हें स्वास्थ्य रक्षाके नियमोंका भी ध्यान नहीं रहता। इसी तरह विद्यार्थीगण प्रायः प्रतिदिन अपने पाठका अभ्यास न कर जब परीक्षाका समय निकट आता है तब रातरात भर जगते और पढ़ते हैं। परंतु इससे लाभके बदले हानि होती है—परीक्षामें पास न होकर फैल (नापास) हो जाते हैं आंखें कमजोर हो जाया करती हैं। और थोड़े ही दिनोंमें उनकी पठन पाठन शक्ति बहुत क्षीण हो जाती है। पढ़े लिखोंका यह व्यवहार बड़ा ही भयंकर है। भावी विद्यार्थियोंको इस व्यवहारसे अपनेको बचाना चाहिये और उतना ही अभ्यास करना चाहिये जितनेसे शारीरिक स्वास्थ्यकी हानि न होने पावे।

विद्याभ्यास और विद्याका उद्देश्य

जीवनको उपयोगी बनानेके लिये विद्याभ्यासकी आवश्यकता होती है। विद्याभ्याससे ज्ञान विकसित होता और ज्ञानके विकाससे मनुष्य अंधेरेमेंसे प्रकाशमें आता है। और तभी अपने आपको पहिचान सकता है। विना ज्ञानके मनुष्य और पशुमें अंतर नहीं होता। "अमेरिकाके एक नीग्रो गुलामसे जब पूछा गया कि जब तुम बैंचे गये थे तब तुम्हारे साथी और कितने थे? उसने उत्तर दिया कि हम पांच जने थे। एक मैं, एक मेरा भाई और तीन सुअर।" अर्थात् उसने सूअर पशुको भी अपना साथी मान लिया था। विद्याके

अभावका यही फल है । विद्या विना मनुष्यत्व नहीं आता अत एव विद्याका अभ्यास यथाशक्ति करनेमें कभी न्यूनता नहीं करना चाहिये । जहाँसे भी हो विद्या प्राप्त करनेमें आगा पीछा सोचना उचित नहीं है क्योंकि वह अमूल्य पदार्थ है । कई विद्यार्थी करते तो विद्याभ्यास हैं परंतु उनकी प्रवृत्ति विद्याभ्यासके विरुद्ध होती है । वे अपना समय या तो खेल कूदमें व्यतीत करते हैं या शरीर शृंगारमें । आजकल शरीर शृंगारका रोग बेहद बढ़ गया है । छैल छबीले रहनेमें ही स्कूल कालेजोंके विद्यार्थी अपनी सभ्यता और विद्वत्ता समझते हैं । इसीमें उनके विद्या-भ्यासका रहस्य छिपा हुआ रहता है । परंतु समझदार मनुष्य इसे रोग समझते हैं । इससे आत्मा निर्बल होती है और विद्या-भ्यास नहीं होने पाता । विद्याभ्यासके लिये विद्यार्थियोंके ये कार्य शत्रु हैं । कई विद्यार्थी इस फेशनके रोगसे ही परीक्षामें अनुत्तीर्ण होते हैं । यदि उनकी स्थिति फेशनके विरुद्ध होती है तो वे इतने अधिक दुःखी होते हैं कि अपने भाग्य और अपने मातापिता आदिको कोसनेमें ही अपना समय व्यतीत करते हैं। उनकी आत्मा चाहती है कि वे कोई राजा न हुए । मानो उनकी समझमें राजाका कर्तव्य भोगविलासोंमें मस्त रहना ही है । इस तरह वे विद्यार्थी अपने विद्याभ्यासमें बड़ी भारी वाधा उपस्थित कर लेते हैं । उनका मन पढ़नेमें नहीं लगता और जब दो चार वार परीक्षामें अनुत्तीर्ण होते हैं तो लाचार होकर पढ़ना छोड़ देते हैं । यदि कोई विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिये आगे बढ़ता है तो वहाँ जाकर वह इन रोगोंकी शिकार हो

जाता है। उसके खर्च इतने अधिक बढ़ जाते हैं कि उसके मातापिता उन्हें सहन नहीं कर सकते। यदि कोई विद्यार्थी इनसे बचा भी रहा और मंजिल तक पहुँच गया तो फिर वह अपने जीवनका उद्देश्य बहुत घृणित बना लेता है। उसके उद्देश्य बनानेमें—स्थिर करनेमें उसके माता पिता, कुटुम्बी, मित्र आदिकी भी सहायता रहती है। भारतके प्रतिशत ९० विद्यार्थियोंका उद्देश्य नोकरी करनेका होता है। नोकरी करना उनकी दृष्टिमें विद्याका फल प्राप्त करना है। मानो विद्याका मूल्य सौ दोसौ पचीस पचास रुपये माहवारी ही है। जो मनुष्य विद्याका मूल्य इतना ही समझता है समझना चाहिये कि वह एक कीमती हीरा पत्थरके बदलेमें बैंचता है। विद्याका मूल्य ही नहीं हो सकता। वह अमूल्य पदार्थ है और उसका उद्देश्य यही है कि मनुष्य अपने कर्तव्य समझ सके और उसके पालन करने योग्य बल प्राप्त कर सके। विद्यावान् कर्तव्यशील मनुष्य निर्धन होकर भी धनिक, दरिद्री होकर भी जगतका नेता, निर्बल होकर भी जगतको वशमें और विजित करनेवाला वीर बन सकता है; ऐसे मनुष्यों-के आगे जगत् अपना मस्तक नमाता है और अगणित रुपयोंकी भेंटें उनके चरणोंमें डालता है। विद्याका उद्देश्य नोकरी बनाकर डिप्टी कलेक्टरी आदि ऊँचे ऊँचे पदोंपर जो नियुक्त होते हैं उनकी तुलना स्वर्गीय महात्मा गोखले या भारतके तिलक महात्मा बालगंगाधर तिलकसे की जाय तो मालूम होगा कि विद्याका उद्देश्य स्थिर करनेमें किसने भूल की है। नोकरी उद्देश्य बनाने-

वालोंने या कर्तव्य पालन करनेवालोंने? विद्याभ्यास कर अपना कर्तव्य पालन करनेवाले महात्मा गोखले स्वर्गवासी हो जानेपर भी तेतीस क्रोड़ मनुष्योंके स्मृति पटलपर विराजमान हैं। सरकारने भी उनका कम सन्मान नहीं किया था। इसी तरह भारतको, निःप्राण भारतको जगा उसमें चैतन्यताका मंत्र फूँकनेवाले महात्मा तिलक हैं। तिलक यदि आज दूसरे देशोंमें पैदा हुए होते या किसी प्रजासत्ताक राज्यके निवासी होते तो उन्हें वहाँके प्रधानका या राष्ट्रपतिका पद विना मिले नहीं रहता। इतनी योग्यतावाले पुरुषने अपना, अपने विद्याभ्यासका जो उद्देश्य स्थिर किया है उसीका यह प्रताप है कि वे आज जीते जागते प्रत्यक्ष देवता समझे जाते हैं और भारतका अकेला एक छोटासा प्रदेश ही उन्हें लाख लाख रुपयेकी भेंट देता है। सार यह है कि विद्याका उद्देश्य रुपये कमाना नहीं होना चाहिये। किंतु मनुष्य बनकर कर्तव्य पालन करना ही विद्याका उद्देश्य है। जो मनुष्य विद्याका उद्देश्य रुपये पैदा करना और उसके लिये नोकरी करना ही स्थिर करते हैं उन्हें उक्त उदाहरणोंसे शिक्षा लेना चाहिये और अपने कर्तव्योंको जानना चाहिये। रुपये तो वे कर्तव्यपालन करते हुए भी पैदा कर सकते हैं। कर्तव्यपर निश्चित रहनेवाले पुरुष भूखे नहीं मरते किन्तु वे स्वतंत्रता पूर्वक रुपयेको पैदा करते हुए भी समाजकी और देशकी बहुत अधिक सेवा कर डालते हैं। नोकरी करनेसे और राजकीय नोकरीसे तो अवश्य ही मनुष्योंका स्वभाव बदल जाया करता है। और उनमेंसे उत्तम उत्तम गुण विदा हो जाया करते

हैं । नोकरी करनेसे तुच्छ और घृणित बातोंको भी महत्त्व देना पड़ता है । और मनुष्य-कर्तव्य जिसे नहीं स्वीकार कर सकता उस कार्यको बलात् करना पड़ता है । पदकी वृद्धि करनेवाले—तरक्की करनेवाले हाकिमोंकी सीमासे भी अधिक खुशामद करना होती है । उनकी मूर्खता भरी बातोंको स्वीकार करना पड़ता व उनके आगे शिर झुकना पड़ता है । विद्या—सच्ची विद्या इन दुर्गुणोंको सहन नहीं कर सकती । इसलिये विद्याभ्यास करनेवालोंका कर्तव्य है—विद्यार्थियोंको उचित है कि वे किसी भी आदतके वशीभूत न हो कर परिश्रमपूर्वक लगातार विद्याभ्यास करें और जहाँसे भी मिले विद्या प्राप्त करें, उसका उद्देश्य मनुष्य बनकर कर्तव्य पालन कर सकनेकी शक्ति उत्पन्न होना ही समझें और कर्तव्य पालनकी ओर ही अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ व वृत्तियाँ झुकावें ।

कठिनाई और विद्याभ्यास

विद्याभ्यासका मूल्य हम एक पाठमें दिखा चुके हैं । परन्तु जिस तरह कहा जाता है कि "शुभेषु शत विघ्नानि" शुभ कार्योंमें सेकड़ों विघ्न आया करते हैं उसी तरह विद्याभ्यासमें भी कई प्रकार कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं । किसी विद्यार्थीकी सांपत्तिक स्थिति ठीक नहीं होती, किसीके मातापिता न होनेसे वह अपना अभ्यास आगे बढ़ानेमें असमर्थ हो जाता है, किसीको मातापिता कमानेके लोभसे आगे नहीं पढ़ाते, इस प्रकार अगणित कठिनाइयाँ विद्यार्थी जीवनमें उपस्थित हुआ करतीं हैं । इन कठिनाइयोंका जो विद्यार्थी

सामना करता है—इनसे बराबर साहसपूर्वक लड़ता रहता है वह इनपर अवश्य विजय पा जाता है और अपनी मंजिलतक पहुँच जाता है। मनुष्य शक्तिके आगे कोई भी शक्ति नहीं चल सकती। प्रकृतिने मानवीय शक्तिमें इतना भारी बल रखा है कि उसके आगे कोई भी शक्ति कार्यकारी हो ही नहीं सकती। पर बात यह है कि उस अपनी शक्तिको—मानवीय शक्तिको पहिचानने और उसपर विश्वास रखनेकी आवश्यकता है। जो साहस छोड़कर विघ्नोंसे डर जाते हैं—कठिनाइयोंके आगे जो थके हुए ढोरके समान शिर झुका देते हैं वे अपने अभीष्टको—उद्देश्यको सिद्ध नहीं कर सकते। तेज़से तेज़ तरवार भी विना चलाये लोहेके टुकड़ेके समान है। शक्तिका विना उपयोग किये ही विघ्न शत्रु कहीं पराजय पा सके हैं?। शत्रुओंके पराजयके लिये शक्ति और साधन तथा दृढ़ निश्चयकी आवश्यकता है। जबतक "कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयं" "या तो कार्यकी सिद्धि करेंगे या शरीरको नष्ट कर देंगे" इस मंत्रके अनुसार दृढ़ निश्चयपूर्वक शक्तिका उपयोग नहीं किया जायगा तबतक छोटेसे छोटा शत्रु भी पराजय नहीं पा सकता। विना इस प्रकारके निश्चयके किसी कार्यकी सिद्धि भी नहीं होती। विद्याभ्यासके लिये और उसकी कठिनाइयोंको दूर करनेके लिये भी इसी प्रकारके निश्चयकी आवश्यकता है। जो विद्यार्थी इस प्रकारके निश्चयके साथ अपनी शक्तिको उपयोगमें लाता है उसकी भारी भारी कठिनाइयाँ सहजमें दूर हो जाया करती हैं। और वह प्रतिकूल परिस्थितियोंको भी अपने अनुकूल बना लेता है। कई विद्यार्थी कठिनाई उपस्थित होनेपर रोते हैं, कलपते हैं, इसका परिणाम यह होता है

कि उनके हृदयमें उस कठिनाईका महत्त्व जम जाता है और फिर उसके विरुद्ध होनेका उन्हें साहस नहीं होता। कठिनाई उपस्थित होनेपर दुःख माननेकी अपेक्षा कठिनाईको एक परीक्षा मानना चाहिये। जिससे कि मनुष्य शक्तिकी परीक्षा होती है। कठिनाई दुःखकी वस्तु नहीं है किंतु वह एक बड़ी उत्तम वस्तु है जिससे कि मनुष्यकी शक्तियोंका विकाश होता है। अग्निमें तपकर और हथोड़ेसे पिट कर ही सुवर्णका विकाश होता है। धूलमें मिला हुआ होनेपर उसकी कीमत बहुत ही कम जानी जाती है। इसी तरह कठिनाइयोंकी आग और चोटमें ही मनुष्यकी शक्तियोंका मूल्य मालूम होता और उनका विकाश होता है। जिनकी स्थिति अनुकूल होती है—जिन्हें किसी कठिनाईका सामना करना नहीं पड़ता उन मनुष्योंका जीवन सीनोमेटोग्राफके चित्रोंके समान है जो इस पृथ्वी तलरूपी पर्देपर विना बोले चाले नाच कूद कर चले जाते हैं—जीवन पूरा कर जाते हैं। विना प्रतिकूल परिस्थितिके अनुकूलतामें आनंद नहीं आता। कड़वे स्वादके विना मीठे स्वादका मूल्य नहीं मालूम होता। विना पराजयके विजयका माहात्म्य समझमें नहीं आता। प्रतिकूल स्थितियाँ अनुकूल स्थितियोंका मूल्य बढ़ाने और उनका माहात्म्य प्रगट करनेके लिये हैं। ऐसी वस्तुके—प्रतिकूल स्थितिके प्राप्त होनेपर दुःख करनेके बदले समझना चाहिये कि यह हमारी अनुकूलताओंको विकशित रूपमें प्राप्त करानेके लिये आई है। विना प्रतिकूल स्थिति प्राप्त हुए, जिस तरह काममें न लेनेपर तरवारको भी जंग लग जाया करती है उसी प्रकार मनुष्य-शक्तिया भी क्षीण हो जाती हैं। अनुकूल स्थिति जिन्हें प्राप्त होती है उनकी शक्तियोंका

विकाश नहीं होने पाता । उन्हें उसीमें बलात् संतोष करना पड़ता है जो उन्हें प्राप्त हैं । इसलिये वे अपना विकाश नहीं कर पाते अथवा उन्हें विकाश करनेका प्रसंग ही नहीं मिलता। विना शानपर धरे हीराकी ज्योति नहीं बढ़ती—विना प्रतिकूल परिस्थितियोंकी कठिनाइयोंके—मनुष्य ज्योति भी क्षीण रहती है । इसलिये विद्याभ्यासमें प्रतिकूल परिस्थिति उपस्थित होनेपर—किसी भी प्रकारकी कठिनाई उपस्थित होनेपर साहस—धैर्य—दृढ़ निश्चय आदि सद्गुणोंके साथ विद्यार्थियोंको उनका सामना करना चाहिये । साम्पत्तिक स्थितिका ठीक न होना, शारीरिक स्थितिका क्षीण होना, माता पिता आदि कुटुम्बियोंकी वाधाका उपस्थित होना अथवा इनसे भी बहुत भयंकर और आकस्मिक आपत्तियोंका भी आ जाना परिश्रमी, साहसी, दृढ़-निश्चयी और कर्तव्यरत विद्यार्थियोंके आगे कुछ भी नहीं है। ये सब दूर की जा सकती हैं। कई ऐसे विद्यार्थियोंके उदाहरण दिये जा सकते हैं जिन्होंने इन कठिनाइयोंका सामना कर इनसे विजय पाई और आज उनका नाम संसार बड़े गौरवसे स्मरण कर रहा हैं। महात्मा ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी रामतीर्थ, माननीय गोखले ऐसे ही पुरुषोंमें हैं जिन्होंने विद्यार्थी अवस्थामें बड़ी बड़ी कठिनाइयोंसे सामना किया था, इनके मार्गमें कई कठिनाइयाँ उपस्थित होती थीं एकपर एक विपत्तियाँ आया करती थीं, परन्तु इनके साहस और धैर्यके साथ अपना बल-प्रयोग करके अशक्त हो लोट जाती थीं। जिस तरह पहाड़ोंपर हजारों और लाखों वर्षोंसे धूप, वर्षा और शीत ऋतुयें अपना २ कामकरके चली जातीं हैं और उनकी स्थितिमें किसी भी प्रकारका परिवर्तन नहीं होता न वे

अपने स्थानसे चिगते और न नष्ट होते हैं इसी प्रकार जिन विद्यार्थियोंका हृदय पर्वतके समान दृढ़ है उनपर विपत्तियाँ आपदाओंकी वर्षा वर्षाकर अपनासा मुँह लिये—शक्तिक्षीण हो होकर चली जाती हैं। उनकी कुछ भी हानि नहीं हो सकती। इसलिये विद्यार्थियोंका कर्तव्य है कि वे पर्वतके समान धैर्यवाले, दृढ़-निश्चयी बनकर विघ्नोंका सामना करें और विद्याभ्यासके कार्यको जबतक कि मंजिल तक न पहुँच जाँय सतत परिश्रमपूर्वक जारी रखें। अवश्य ही वे अपने कार्यमें सफल होंगे और संसार उनकी कीर्तिको अपनी स्मरणपत्रिका (Diary—दिनई) में स्थान देगा। उस समय वे समझेंगे कि अनुकूल स्थितिवालोंके कार्योंसे प्रतिकूल परिस्थितिवालोंका कार्य कितना बढ़ा चढ़ा होता है।

असफलतामें सफलताका रहस्य।

बेसमझ लोग असफलताको देखकर हँसते हैं। जब कि समझदार लोग असफल मनुष्यकी प्रशंसा करते हैं। एककी दृष्टिमें असफलता घृणाके योग्य है और दूसरेकी दृष्टिमें असफलता आनंद प्रदायिनी वस्तु है, एक उसे देखकर व्यंगकी हँसीसे हँसता है दूसरा उसे देखकर सफलताकी दृष्टिसे खुशी होता है। व्यंगकी हँसी हँसनेवालोंमें वे ही होते हैं जिन्हें किसी ऐसे कार्य करनेका प्रसंग नहीं मिला है जिनमें असफलता प्राप्त हुई हो क्योंकि वे असफलतासे डरकर कोई नवीन कार्य ही प्रारंभ नहीं करते। एक कविने कहा है कि "नीच पुरुष विघ्नोंके भयसे किसी कार्यको प्रारंभ ही नहीं करता"

ऐसे ही पुरुष असफलताको देख कर हँसा करते हैं। परंतु जो समझता है कि असफल होनेसे ही सफलता प्राप्त होती है वह असफलताको देख-कर प्रसन्न होता है क्योंकि असफल मनुष्य कुछ न कुछ सफलता अवश्य प्राप्त कर लेता है जब कि न करनेवाला कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं करता । पहाड़की चोटीपर चढ़नेवाला मनुष्य यदि अधबीचमेंसे लौट आवे तो न चढ़नेवाले मनुष्य तो यही कहेंगे कि क्यों इतना बड़ा साहस किया था, आखिर लौट आये न ? और उसकी हँसी करेंगे, पर वह कहेगा—अरे मुर्खो ! न चढ़नेवालोंसे तो मैं लाख दर्जा अच्छा हूँ कि आधी दूरतक तो चढ़नेमें मैंने सफलता प्राप्त करली है । यही असफलतामें सफलताका रहस्य है । एक चींटा दीवालपर वार वार चढ़ता और गिरता है, पहिली वार कुछ दूर चढ़-ता है फिर गिरता है दूसरी वार उससे कुछ आगे चढ़ जाता है पर फिर भी असफल होकर गिर पड़ता है, इसी तरह वह कई वार चढ़नेके कार्यको—अपने उद्देश्यको—दृढ़निश्चयको नहीं छोड़ता, वार वार करता है, अंतमें जाकर उसे सफलता मिलती है और वह चढ़ जाता है। उसके वार वार गिरनेपर मूर्ख हँसते हैं परंतु समझवार कहते हैं कि वह असफलता नहीं किंतु बराबर सफलता प्राप्त करता जा रहा है। साईकलपर चढ़ना सीखनेवालेको विना गिरे, विना चोट खाये चढ़ना नहीं आता । उसके गिरनेपर रास्तेमें चलनेवाले जिन्हें साईकलपर चढ़नेका सौभाग्य ही प्राप्त नहीं होता हँसते हैं परंतु समझदार कहते हैं कि उसने गिरकर अपने मार्गके एक कंटकको उखाड़ डाला । एक पुरुषने अपना घर बड़े परिश्रम और कठिनताके साथ बनवाया था। उस कार्यमें उसे वार वार असफलताओंका सामना

करना पड़ा था परंतु निरंतर परिश्रमके बाद उसका मकान जब बन कर तैयार हो गया तब वह अपने मित्रको दिखलाने लाया। मित्र रामने एक भी घरका मकान नहीं बनवाया था। वे आकर उसमें दोष निकालने लगे। मकान बनवाने वाला मनुष्य कुछ देर तक तो सुनता रहा परंतु आखिरमें उसने कहा कि भाई ! तुम मेरेसे एक बातमें बड़े भाग्यशाली हो अर्थात् मैं तुम्हारे मकानमें दोष ही नहीं निकाल सकता। उसके कहनेका भाव यही था कि तुमने एक भी मकान नहीं बनवाया है। काम करनेवालेके दोष निकाले जाते हैं पर जो काम ही न करे उसके क्या दोष निकाले जावेंगे। काम करनेवाले ही असफल और सफल हो सकेंगे, पर जो कोई काम ही नहीं करते वे न तो असफल ही होंगे और न सफल। वे असफलताका मूल्य ही नहीं समझ सकते। एक कविने क्या अच्छा कहा है कि—

लीक लीक गाड़ी चले लीकहि चले कुपूत।
लीक छोड़ तीनों चलें शायर सिंह सुपूत ॥

कुपूत—नीच मनुष्य ही बापदादाओंके मार्गको पकड़े जाते हैं वे कोई नया काम नहीं उठाते परंतु सुपूत, सिंह और शायर पूर्वजोंके मार्गकी प्रतीक्षा नहीं करते। उनकी दृष्टिमें भिन्न भिन्न पुरुषोंको भिन्न २ मार्गोंका अवलंबन करना ही उचित प्रतीत होता है। पूर्वजोंका मार्ग वे पूर्वजोंका ही समझते हैं उसपर चलना वे अपनी शक्ति और ज्ञानके खिलाफ-विरुद्ध समझते हैं। वे अपना उद्देश्य आप निश्चित करते और उसका मार्ग स्वयं बनाते हैं। वे अपने मार्गके विघ्नोंकी परवाह नहीं करते और

न उनसे लड़नेमें विजित होकर बैठ ही जाते हैं; किंतु असीम प्रयत्नों और दृढ़ निश्चयसे विघ्नोंका सामना करते हैं। मिलनेवाली असफलताओंको वे अपनी सफलता समझते और ज्यों २ उन्हें असफलता प्राप्त होती है त्यों त्यों वे अपनेको सफलताके समीप पहुँचते हुए समझते हैं। जिन्होंने महाराणा प्रतापका जीवन-चरित्र पढ़ा है वे जान सकते हैं कि असफलताओंमें सफलताका रहस्य किस प्रकार छुपा रहता है। यदि महाराणा प्रताप लगातारकी असफलताओंमे घबड़ाकर अपने दृढ़ निश्चयको-अपने स्वातंत्र्य प्रेमके उद्देश्यको छोड़ देते तो आज उनका नाम इतने गौरवसे स्मरण करनेका कोई कारण ही नहीं रहता, वे भी एक पराधीन–बादशाही गुलामोंके समान समझे जाते। उन्हें हिन्दू-सूर्यकी उपमा देनेका अवसर ही नहीं मिलता। परंतु उनकी निरंतरकी असफलताओंमें गुप्त रीतिसे सफलताका संग्रह हो रहा था वह बढ़ते बढ़ते पूर्ण सफलताके रूपमें संसारके सन्मुख आया और जगतने उनके प्रतापको देखा। उनकी स्वंतत्रताकी सिद्धिके एक क्षणके एक समयके आगे उनके बारह वर्षोंकी असफलताओंका दुःख कुछ भी नहीं है। इसी तरह नेपोलियन बोनापार्ट भी असफलताओंसे घबड़ानेवाला पुरुष नहीं था। वह असफलताओंसे ही अधिकाधिक बलवान्, तेजस्वी, दृढ़-निश्चयी और कर्तव्यशील बनता था। ज्यों ज्यों उसे असफलताएँ प्राप्त होतीं त्यों त्यों वह और अधिक शौर्यके साथ युद्ध करता और अंतमें जाकर सफलता प्राप्त करता था। बर्फकी पहाड़ीपर चढ़नेमें बार बार असफलताएँ मिलनेपर भी

उसने अपने साहसको नहीं छोड़ा, किंतु साहसके साथ निरंतर उद्योग और प्रयत्नोंसे सफलता प्राप्त की। सारांश यह है कि असफलताओंसे डरकर कार्यको नहीं छोड़ना चाहिये, किंतु समझना चाहिये कि विना सफलताके असफलता होती ही नहीं है, असफलताके साथमें सफलता अवश्य रहती है और वार वारके प्रयत्नोंसे असफलता नष्ट होकर शेषमें सफलता ही हाथमें आती है।

उद्योग।

एक संस्कृत नीतिकारने उद्योगी पुरुषको सिंहकी उपमा दी है। सिंह जिस प्रकार निर्भय, शौर्यवान् और प्रतापी हुआ करता है उसी तरह उद्योगी पुरुष भी होता है। वह किसी भी भयसे नहीं डरता, प्रत्येक कार्यको सरल समझता है और सदा तेजस्वी रहता है। उद्योग मनुष्यत्वका लक्षण है। विना उद्योगके मनुष्यत्व प्रगट ही नहीं हो सकता। अनुद्योगी मनुष्यके मुँहपर उदासी छाई रहती है। वह अपनी आत्माका भरोसा ही नहीं करता और न किसी कार्यमें आगे पैर बढ़ाता है। आलस्य उसका मूल मंत्र होता है। उसकी आत्मशक्ति जंग लगी हुई तरवारके समान हो जाती है। अनुद्योगी मनुष्योंकी वांछाएँ— इच्छाएँ बड़ी बड़ी होती है, क्योंकि उनका चंचल मन दौड़ा करता है, नवीन नवीन इच्छाएँ उत्पन्न करता है, परंतु उन इच्छाओंकी प्राप्तिके लिये वह उद्योग नहीं करता। उसकी

इच्छाएँ अतृप्त रहती हैं और न वे कभी पूरी ही होतीं है। क्योंकि उसका शरीर इतना आलसी हो जाता है कि उससे कोई कार्य ही नहीं बनता और न उसकी किसी कार्य करनेकी ओर रुचि ही होती है। ऐसे आलसियों--अनुद्योगियोंको पराधीन होकर अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है और दूसरोंकी भली बुरी सुनना पड़ती है । आलसी मनुष्योंका जीवन निर्लज्ज हो जाता है । वे अपनी उदरपूर्तिके लिये–रोटियोंके टुकड़ोंके लिये परिश्रम करनेके बजाय–उद्योग करनेके बजाय भली बुरी सुन लेना पसंद कर लेते हैं । ऐसोंहीके लिये कामचोरकी उपमा दी जाती है अर्थात् वे काम करनेसे बड़े हिचकते हैं । उन्हें भाग्यका सहारा रहता है । भाग्यहीको सब कुछ समझते हैं । उनके कार्य भाग्यपर ही अवलंबित रहते हैं । ऐसोंको मनुष्य कौन समझदार कहेगा ? जो किसी प्रकारका मनुष्यत्व प्रगट न कर भाग्यपर–जड़ वस्तुपर ही अपना भला बुरा होना छोड़ देते हैं । भाग्योंका बनाना और उन्हें नष्ट करना यह मनुष्योंके ही हाथमें हैं जो मनुष्य " भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषं ""भाग्य ही सब जगह फलता है विद्या और शक्ति कुछ कार्यकारी नहीं" इस मंत्रकी जाप्य करनेवाले हैं वे उस मकड़ीके समान हैं जो जाल बुनना जानती है परंतु उसमें फसकर उससे निकल नहीं सकती। भाग्यवादी–भाग्यहीको सब कुछ माननेवाले पुरुष भाग्य बनाना तो जानते हैं–क्योंकि उन्हें यह तो विश्वास होता ही है कि हम जैसे कर्म करेंगे वैसे ही हमारे भाग्य बनेंगे और फल देंगे–परंतु भाग्य नष्ट करना

नहीं जानते । उद्योगी पुरुष प्रत्येक कार्यको बनाना और नष्ट करना दोनों जानता है । अथवा नष्ट करनेकी क्रिया जाने विना वह किसीकी रचना ही नहीं करता । भाग्यको वह लड़कोंका खिलौना समझता है और उसके बनाने बिगाड़नेकी वह तनिक भी परवाह नहीं करता। उद्योगी पुरुषके हृदयपर किसी भी प्रकारकी स्थिति प्रभाव नहीं जमा पाती । वह हरेक परिस्थितिमें रहता है । वह दुःखोंके सहन करनेके लिये भी उसी तरह सदा तैयार रहता है जिस तरह सुखोंके लिये। वह इन परिस्थितियोंको अपनेद्वारा बनाये हुए खेल समझता है। प्रतिकूलसे प्रतिकूल परिस्थितिको अनुकूल बना लेना उसके बाँये हाथका खेल रहता है। उद्योगी पुरुष किसी कार्यके फलके लिये नहीं ठहरता और न फल प्राप्त होनेपर हर्ष या विषाद करता है। अनुद्योगी पुरुष--आलसी पुरुष कार्यकी जड़में भाग्यको देखते हैं। और उद्योगी पुरुष कार्यके फलमें भाग्य देखते। वे कर्म करनेके पहिले "भाग्यं फलति सर्वत्र" "भाग्य ही सब जगह फलता है" नहीं कहते किंतु परिश्रमसे--उद्योगसे कार्य करनेपर जब उससे फल प्राप्त हो जाते हैं तब उस फलकी ओर संकेत कर सबको बताते हैं कि "भाग्यं फलति सर्वत्र" अर्थात् हमारे भाग्यका—कर्मका--कार्यका फल देखो, वह निरर्थक नहीं जाता। कर्मका फल अवश्य प्राप्त होता है। अनुद्योगी राजाओंका राज्य नष्ट हो जाता है उद्योगी पुरुष राज्य प्राप्त करते, उसकी वृद्धि करते और बड़ी बड़ी महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी कर डालते हैं। एक सिपाईका लड़का नेपोलियन सतत

परिश्रम और उद्योगसे ही जगतको कँपा सका और राजा बन सका था। किसानका लड़का गारफील्ड अमेरिकाका राष्ट्रपति आलस्यके प्रशादसे या भाग्यके भरोसेपर नहीं हुआ था किंतु उसे उद्योग करना पड़ा था। रोटियोंकी थाली परोसी हुई होनेपर भी यदि कोई भाग्यका भरोसा लेकर बैठ जाय और हाथ न चलावे तो भाग्य उसके मुँहमें न रख जायगा। विना प्रयत्न किये—विना हाथ पैर हिलाये भोजन पेटमें नहीं जा सकता। इसी प्रकार विना परिश्रम किये भाग्यका फल भी प्राप्त नहीं होता। जंगलमें हजारों औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, पुष्प खिलते हैं, स्वादिष्ट फल फलते हैं परंतु निरर्थक। उत्पन्न हुए और झड़-कर धूलमें मिल गये। यदि उन ही फल पुष्प और औषधियोंके मानव समाजके उपयोगमें आ सकनेके लिये प्रयत्न किया जाय तो रोगनिवृत्ति, मनोविनोद और मनस्तुष्टि हो सकती है। इसी तरह भाग्य अच्छे अच्छे फल लेकर सन्मुख आता है परंतु आलसी मनुष्य उन फलोंके लिये प्रयत्न नहीं करते हैं अतएव वे फल झड़ जाते हैं। समयकी धूलमें मिल जाते हैं। प्रसंग टल जानेपर दोनों हाथोंसे माथा पीटना पड़ता है। उद्योगी पुरुष प्रसंगको नहीं जाने देता वह ज्योंही प्राप्त होता है त्योंही अपनी कर्तव्यकी घानीमें पीसकर उसका कस--सार निकाल लेता है। उद्योगियोंके लिये सब सहज है। और अनुद्योगियोंके सब कठिन, कठिनसे भी कठिन। अनुद्योगी—आलसी भारत आज परावलंबी—दूसरोंकी ओर ताकनेवाला बन गया है। जब यह उद्योग करता था--परिश्रम करता था आलस्यको शत्रु समझता था तब

दूसरे देश इसकी ओर ताकते थे। यह उद्योग और अनुद्योगका ही प्रताप है जिसे हम ईश्वरकी लीला समझते थे --अरे अभी तक कई बुद्धिके दुश्मन समझा भी रहे हैं उसी शक्तिके फल--रेला, तार, टेलीफोन आकाशयान, ग्रामोफोन, जहाज, कलदार बदूके, ऐंजिनोंको जो कि उद्योग देवताने हमारे सामने लारखे हैं। उद्योगका इस प्रकार प्रत्यक्ष फल शायद पहिले कभी देखनेमें नहीं आया होगा। अतएव प्रत्येक पुरुषको, प्रत्येक स्त्रीको, बालक, वृद्ध, जवान आदि सभी अवस्थावालोंको उद्योग करना चाहिये। उद्योगको अपने जीवनका हथियार--शस्त्र बनाना चाहिये। और कभी उद्योगके विरुद्ध आलस्य आदि दुर्गुणोंको अपनेमें स्थान नहीं देना चाहिये। क्योंकि आलस्य शत्रु है वह जीवनको नष्ट करता है--उससे चैतन्यता जाती और जड़ता उत्पन्न होती है। चैतन्यत्वका सहायक उद्योग ही है।

उदारता ।

संकुचित दृष्टिका न होना उदारता है। उदारता प्रत्येक कार्यमें होनी आवश्यकीय है। व्यापार, व्यवहार, दान, सेवा आदि प्रत्येक मानवीय कृत्य उदारताकी अपेक्षा रखते हैं। मनुष्योंके सब सद्गुणोंमें उदारता गुण मुख्य है क्योंकि विना इस गुणके मनुष्योंके प्रत्येक कार्योंमें न्यूनता दिखलाई देती है। उदारता कार्योंमें सरलता, सफलता और उच्चता उत्पन्न करती है। जो

कार्य उदारताके साथ नहीं किये जाते वे न तो सरस ही होते हैं और न सरल तथा उच्च भी नहीं होते क्योंकि अनुदारतासे उन कार्योंके लिये जितनी शक्तिका व्यय किया जाता है वह संकुचित रीतिसे किया जाता है इसलिये कार्योंमें भी संकुचितता—न्यूनता आ जाती है। शक्तिका विकाश नहीं होने पाता। मानसिक विचार आगा पीछा नहीं सोचने पाते। वे उसी मर्यादित क्षेत्रमें घूमते हैं जिसे अनुदारता नियत करदेती है। अनुदारता और उदारताके उदाहरणोंका हमें प्रतिसमय सामना करना पड़ता है उनकी प्रशंसा और अप्रशंसा करना पड़ती है और यदि हम स्वयं उनकी बलि होते हैं तो प्रशंसा और अप्रशंसा सहन करना पड़ती है। उदार मनुष्यके कार्य कभी बिगड़ने नहीं पाते वह कार्यसिद्धिके लिये संकुचित भावोंको अपनेमें स्थान नहीं देता किंतु उसका उद्देश्य उस समय केवल उठाये हुए कार्यकी सिद्धि करना ही होता है। उदारता पूर्वक जो कार्य किये जाते हैं उनका फल भी सुंदर, यशस्वी और संतोषकारक होता है। जब कि अनुदारताके कार्य अपूर्ण और अशांति उत्पन्न करते हैं। उदारका फल न केवल धार्मिक सामाजिक या पारलौकिक कार्योंमें ही होता है और न इन कार्योंके लिये ही इस गुणकी आवश्यकता है। किंतु लौकिक कार्योंके लिये—हमारे प्रतिदिनके कार्योंके लिये भी इसे आवश्यकीय समझना चाहिये जैसा कि ऊपर कहा गया है। यह प्रत्येक लौकिक और पारलौकिक कार्योंमें अपने अस्तित्वकी आकांक्षा रखती है। विना उदारताके हमारे भोजन भोजन नहीं, वस्त्र वस्त्र नहीं, व्यापार व्यापार नहीं। क्योंकि अनुदारता कहती है

कि अच्छे भोजनोंकी अपेक्षा गयाबीता भोजन और गयेबीते भोजनकी अपेक्षा भूँखे सो रहना अच्छा है। अच्छे साफ सुथरे सादे वस्त्रोंकी अपेक्षा मैले फटे गंदे वस्त्र अच्छे हैं इसी तरह वह कौड़ी कौड़ी और छदाम छदामके लिये मनुष्यको व्यापारिक कार्यमें बाध्य करती है और ग्राहकोंको अरुचि उत्पन्न करा देती है प्रसिद्धि नहीं होने देती। और न व्यापारमें उन्नति ही करने देती है। कईएकोंका कहना है कि उदारता फिजूल खर्ची है और अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे अथवा व्यापारिक दृष्टिसे उसे महत्त्व नहीं दिया जा सकता। परन्तु यह कहना हम माननेके लिये तैयार नहीं है क्योंकि उदारता मितव्ययके नियमोंको उल्लंघन कर देनेका नाम नहीं है। मितव्ययताके नियमोंपर ध्यान रखकर जो उदारता की जाती है वही उदारता है इसके विरुद्ध तो फिजूल खर्ची अथवा शक्तियोंका दुरुपयोग है। व्यापारके लिये दुकानको साफ सुथरी रखना, ग्राहकोंके साथ मिष्ट भाषण करना, उनसे सहानुभूति रखना, उचित मुनाफेपर व्यापार करना, ग्राहकोंका आदर करना और इसी प्रकारके प्रत्येक उन व्यक्तियोंके साथ जिनका व्यापारसे संबंध है व्यवहार रखना—उदारताहीके अंतर्गत है। उदारता मुनाफेके लिये प्रतिबंध नहीं करती, उदारता आपको अधिक खर्च करनेकी उत्तेजना नहीं देती, उदारता व्यापारिक नियमोंको भंग करनेकी अनुमति नहीं देती। अतएव वह अर्थ शास्त्रकी दृष्टिसे गर्हित नहीं कही जा सकती किंतु वह समयानुसार सब ही जगह अपनी अपेक्षा रखती है। उदार मनुष्यका हृदय विशाल होता है। सहानुभूतिपूर्ण होता है। उसमें प्रेमका प्रवाह बहता है। जिससे

कि जगतको वह अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। उसके कार्योंमें कोई बाधा डालनेवाला नहीं होता और न कोई निंदा ही करता है । उदार व्यापारीका व्यापार बढ़ता है उससे संबंध करनेके लिये सब लालायित रहते हैं । उदार धर्मात्माकी बातोंको सब प्रमाणीक और माननीय समझते हैं क्योंकि उसकी दृष्टिसे पक्षपातका चश्मा हट जाता है वह सब स्थानोंमें, सब समयोंमें धर्मकी—स्वभाविक भावनासे कार्य लेता है। कोई गुरु, कोई पुस्तक, कोई प्रामाणिक मनुष्य उसके मनको अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकता। हाँ यदि उसे कोई आकर्षित करता है तो उसका धर्म—आत्मधर्म—आत्म स्वभाव । वह जहाँ इस वस्तुसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध पाता है वहींसे लेता है । उसे किसी पंथका पक्षपात अन्य पंथसे ग्रहण न करने, उनकी प्रशंसा न करनेके लिये वाध्य नहीं कर सकते । उदार सेवकोंकी भी सब चाह करते हैं, प्रेम करते और उनकी प्रतिष्ठा व प्रशंसा करते हैं । इसी प्रकार उदार स्वामियोंके लिये सेवकगण सदा अपने प्राण तक न्योछावर करनेको तैयार हो जाते हैं । भारतमें स्वतंत्र हिन्दू राज्यकी पुनः प्रतिष्ठापना करनेमें उदारताने ही सहायता दी है महाराणा प्रतापकी उदारताके कारण—उनके विशाल प्रेमहीके कारण उनके मंत्री **भामासाहने** अपनी सब संपत्ति देकर उदारताका परिचय दिया था और इसी उदारतासे महाराणा अपने राज्यको पुनः प्रतिष्ठित कर सके थे । संसारमें वे ही पुरुष दार्शनिक और तत्त्वज्ञ समझे जाते हैं जो प्रत्येक बातको उदारतासे विचार करते हैं। उदारतापूर्वक विचार करनेसे ही दार्शनिकोंको—तत्त्वज्ञोंको—राईके भीतर पहाड़

दिखलाई पड़ जाता है तलाओं और नदियोंमें रत्न उत्पन्न नहीं होते । रत्नोंकी उत्पत्तिका स्थान समुद्र ही होता है। बकरों, बैलों और गायोंके मस्तकोंमें मोती पैदा नहीं होते, उनकी उत्पत्तिका स्थान हाथीका विशाल मस्तक ही होता है। इसी प्रकार प्रत्येक कार्यके सुंदर मूल तत्त्व उदारताकी विशालता हीमें मिल सकते हैं। अनुदारताकी संकुचिततामें नहीं। कार्योंके मूल तत्त्वोंका मिल जाना—उनसे प्रत्यक्ष संबंध हो जाना ही कार्यकी सफलता, पूर्णता और सुंदरताका चिह्न है। इस लिये प्रत्येक कार्यमें मनुष्यमात्रको उदारताका व्यवहार करना चाहिये—लेनदेनमें, बातचीतमें, पारस्परिक व्यवहारमें, स्वामित्वमें, सेवकाईमें, विचारोंमें, दानमें, दयामें, धर्ममें, मित्रतामें, पढ़नेमें, लिखनेमें, ऋण लेनेमें, ऋण देनेमें, किसीकी संपत्ति ग्रहण करनेमें, दंड देनेमें, दंड लेनेमें, आदि प्रत्येक कार्योंमें उदारताका व्यवहार रखो। उदारता सूर्य-लोकमें—प्रकाशमय स्थानमें लेजानेवाली है और अनुदारता अमावस्याकी घनघोर घटाओंसे आच्छादित अंधकारमय रात्रि है जिसमें हम-दूसरी वस्तुओंकी बात तो न्यारी है-अपने आपको भी नहीं देख सकते और जिस प्रकार इस रात्रिमें चलनेसे गिरनेका—ठोकर खानेका भय रहता है उसी प्रकार अनुदारता पूर्वक कार्य करनेसे उसमें हानि होनेकी न केवल संभावना ही रहती है किंतु निश्चितता रहती है अर्थात् हानि अवश्य ही उठाना पड़ती है। उदारताके प्रकाशमें—उदारताकी विशालतामें हम मनमाने ढँगसे कार्य कर सकते और उनके सुफलोंसे अपनी तृप्ति कर सकते हैं। अतएव उदारताका सदा आश्रय रखना चाहिये।

परोपकार ।

विना किसी प्रकारके प्रतिफलकी इच्छाके दूसरोंका उपकार करना परोपकार है। परोपकार ही सृष्टिका संचालक है । यदि पृथ्वी तलसे आज परोपकारकी भावना उठ जाय तो शायद ही इसकी गति आगे बढ़ सके ? । क्योंकि प्रत्येक जड़ पदार्थों तकमें भी प्रकृतिने परोपकारकी कृति रख छोड़ी है । चैतन्यकी तो बात ही न्यारी है । जल, पृथ्वी, वृक्ष आदि क्या संसारका कम उपकार कर रहे हैं ? वे चैतन्य जगत्के लिये ही मानो अपना जीवन समझे हुए हैं । इसी प्रकार चैतन्य जगत्में भी प्रकृतिदत्त कार्योंमें एक दूसरेकी उपकार करनेकी वृत्तिका रहस्य छुपाया गया है । गौ, बैल, हाथी, घोड़ा आदि जीव क्या मनुष्यका कुछ कम उपकार करते हैं ?। मनुष्य भी आपसमें परोपकार करनेके लिये बाध्य है परंतु मनुष्य विशेष ज्ञानवान् प्राणी है । उसका बहुत कुछ विकाश हुआ है इसलिये वह अपना उपयोग मनमाने ढँगसे करने लगता है । वह प्रकृति आदिकी उपेक्षा कर जाता है । और जहाँ स्वार्थ देखता, जहाँ अपनी इच्छाओंकी तृप्ति देखता, वहां हाथ डालता है। अन्यथा उपेक्षा कर जाता है। इसीलिये मनुष्य जगत्में परोपकारकी बासना बहुत कम दिखलाई देती है । जहाँ स्वार्थकी ही दुर्गंध आती है । बहुत कम मनुष्य एसे होंगे जो परोपकारिणी वृत्ति रखते हैं । बिना किसी प्रकारकी स्वार्थ भावनाके दूसरोंका उपकार करते हों । स्वार्थ भावनायुक्त जो उपकार करता है वह तो एक प्रकारसे व्यापार है । जिस प्रकार व्यापारमें द्रव्य

देकर उसके प्रतिफलमें मूल और व्याज प्राप्त करनेकी इच्छा की जाती है उसी प्रकार स्वार्थी मनुष्य भी उपकारके प्रतिफलमें कुछ वांछा रखते हैं और वह वांछा ज्योंही पूरी नहीं होती त्योंही वे अपने उपकारोंका ढोल पीट पीट कर जगत्को बतलाते हैं कि हमने अमुक उपकार किया था परंतु उसका बदला हमको नहीं मिला। ऐसे मनुष्य उपकार—परोपकारके मार्गसे कोसों दूर हैं—उन्होंने परोपकारको समझा तक नहीं है। परोपकारका मार्ग बड़ा कठिन है। उससे निर्बल आत्माएँ नहीं जा सकतीं, वे स्थान स्थानपर स्वार्थके पत्थरोंसे ठोकरें खाती, गिरती, पड़ती है और अंतमें जाकर उस मार्गसे हट जाती हैं। इस मार्गपर वे ही आत्मा चलती हैं जिनमें बल होता है जो अपना कर्तव्य परोपकार ही समझती हैं। और परोपकारके ही लिये अपना जीवन मानती हैं। निर्बल आत्माएँ उन वृक्ष, जल, पृथ्वी आदिसे भी गई बीती हैं जो परोपकारके लिये अपना कार्य निरंतर किया करती हैं जिन्हें किसी प्रकारके प्रतिफलकी आशा ही नहीं होती। परोपकारी मनुष्यका हृदय प्रेमसे पिघला हुआ होता है। उसके नेत्र दूसरोंकी विपत्ति या आवश्यकताओंकी अपूर्ति देख नहीं सकते, कान किसीकी विपत्ति कहानी सुन नहीं सकते, उसकी नासिका स्वार्थकी दुर्गंधको सूंघनेमें असमर्थ हो जाती है, जिह्वा उस समय खाना पीना छोड़ देती है। और उसका शरीर विपत्तिको दूर करनेके लिये प्रयत्न करने लगता है। परोपकारी मनुष्यका हृदय एक प्रकारसे दूसरोंपर ही अवलंबित रहता है। ज्यों ही कोई प्राणी दुःखी हुआ कि उसका हृदय भी दुःखी होता है। सुखीको देखकर वह भी सुखी हो जाता है

और यही मनुष्य मात्रका कर्तव्य है। एक कविने कहा है कि—"दुःखी हृदयोंका दुःख दूर करनेके ही लिये मनुष्यकी उत्पत्ति हुई है, पूजा पाठके लिये तो देवगण ही बहुत था"। अर्थात् मनुष्यका सबसे बड़ा कर्तव्य यही है कि वह परोपकारी हो। विना परोपकारके मनुष्यका जीवन निरर्थक है। मनुष्यकी शक्तियाँ निरर्थक हैं। क्योंकि उन शक्तियोंका उपयोग यदि परोपकारमें न कर स्वार्थहीमें किया जाय तो अन्य प्राणधारी जिनके कि पास वे शक्तियाँ नहीं हैं अपने स्वार्थकी पूर्ति कर ही लेते हैं। संसारमें सबसे अधिक ज्ञानशक्ति मनुष्यमें मानी जाती है। अन्य प्राणी ज्ञानमें बहुत गिरे हुए दिखलाई देते हैं परंतु स्वार्थ साधना तो वे भी कर ही लेते हैं। छोटे छोटे जंतु तक जब अपना पेट भर लेते हैं तो मनुष्य भी यदि अपनी शक्तिका उपयोग यदि उसी पेटको भरनेमें करे तो अवश्य ही कहना होगा कि उसने अपनी शक्तिका दुरुपयोग किया है और वह अपने कर्तव्य पथसे च्युत हो गया है। जब कि केवल भोजन आदिके प्रतिफलमें गौ, बैल आदि पशु मनुष्योंका अगणित उपकार करते हैं, शक्तिसे अधिक उनकी सेवा करते हैं, तब मनुष्य यदि प्राणियोंका उपकार न कर केवल स्वार्थहीके वश रहे तो उसे कौन मनुष्य कहेगा? वह तो पशुओंसे भी गया बीता है। विना सींग और पूँछका पशु उसे मानना चाहिये। उसे इस दुनियाँमें रहनेका ही अधिकार नहीं है। भला, जो जड़ पदार्थों तकसे अपना उपकार कराता है वह यदि कुछ भी परोपकार न करे तो उसे इस पृथ्वीमें रहनेका अधिकार ही कौन देगा?। उसे अपनी स्वार्थकी सिद्धिके लिये या तो जीवनोपयोगी सर्व पदार्थ स्वयं ही इकट्ठे करना

चाहिये या यदि वह उन पदार्थोंकी पूर्ति अन्य परोपकारी वस्तुओं और प्राणियोंसे करता है तो उसका कर्तव्य है कि वह भी परोपकारी बने। जब कि संसारमें एक दूसरेका जीवन परोपकारहीपर टिक रहा है तब यदि कोई वस्तु या प्राणी परोपकार न कर दूसरोंके उपकारहीसे उपकृत होता रहे तो उसका जीवन निरर्थक ही समझना चाहिये। अतएव मनुष्यका सबसे पहिला कर्तव्य है कि जहान्में शांति बनाये रखने और अपने ऊपर जो अन्य वस्तुओं और प्राणियोंके अगणित उपकार हुए हैं उन्होंका प्रतिफल चुकानेके लिये सदा परोपकारके लिये तैयार रहे। अपनी सम्पूर्ण वृत्तियाँ परोपकारमय बनावे। अपना जीवन परोपकारी, अपने कार्य परोपकारी, अपने कर्तव्य परोपकारी, अपनी शक्तियाँ परोपकारी बनावे। दूसरोंके दुःख-सुखपर ही अपना दुःख सुख अवलंबित रखे। तभी मनुष्य जन्म सार्थक होगा और तभी जगतमें शांति रखी जा सकेगी। क्योंकि जो मनुष्य स्वार्थी होता है और जिसे अपनी ही चिंता रहती है उस मनुष्यको संसार अमंगलकारी समझता है। ऐसे मनुष्यकी सूरत देखना पाप समझता है। ऐसे ही मनुष्यके लिये संसार कहता है कि अमुककी सूरत देख ली इससे रोटी नहीं मिली। सारांश यह है कि स्वार्थीकी अपवित्र आत्मासे शान्ति भंग होती है। इसलिये स्वार्थ पाप है। स्वार्थ दुराचार है। और परोपकार पुण्य है। सदाचार है। यहाँ यह कहनेका भाव नहीं है कि तुम सर्वथा स्वार्थ छोड़ दो, न व्यापार करो, न खाओ, न कपड़े पहिनो, किंतु कहना यही है कि स्वार्थके साथ साथ परोपकार भी करो, स्वार्थ उतना ही करो जितनी कि तुम्हारी आवश्यकताएँ हैं,

उनसे अधिक मत बढ़ाओ। और परोपकारमें स्वार्थको स्थान मत दो। परोपकारके लिये सदा तत्पर रहो। उसे अपना कर्तव्य समझो।

स्वावलंबन ।

अपने आपकी—अपनी आत्माकी शक्तियोंका विश्वास रखकर स्वयं काम करना स्वावलंबन कहलाता है। और दूसरेके मुँहकी ओर ताकना परावलंबन है। जीवन संग्राममें जो स्वावलंबी होता है वही विजय पा सकता है। यद्यपि यह ठीक है कि बिना अन्य सहायताओंके कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होते परंतु स्वावलंबी मनुष्य अन्योंकी सहायताके लिये ठहरता नहीं है। वह कार्य प्रारंभ कर देता है और अपनी बुद्धि चतुरता आदि गुणोंसे उसकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करता है। वह किसी अन्यकी सहायताकी याचना नहीं करता। किंतु कार्य सिद्धिके प्रत्येक उपायको स्वयं करता और उनके करनेकी हिम्मत रखता है। उसके इस गुणके प्रभावसे ही अन्य मनुष्य स्वयं ही आकर उसे सहायता देने लगते हैं। परंतु इतनेपर भी वह अपने प्रयत्न बंद नहीं कर देता। वह दूसरोंसे जो सहायताएँ मिलती हैं उन्हें अपने प्रयत्नोंका उपहार समझता और शेष प्रयत्न स्वयं करके कार्यको अंतिम मंजिल तक पहुँचा देता है अर्थात कार्यसिद्धि कर लेता है। स्वावलंबी मनुष्य अपने कार्यके लिये अन्योंकी बात तो न्यारी है, ईश्वर तकसे प्रार्थना नहीं करता। वह ईश्वरसे सहायता लेता है, पर किस काममें ?

केवल अपने स्वरूपको पहिचाननेमें । बस, जिस तरह सिंहका बच्चा भेड़ोंकी संगतिमें रहकर भेड़ हो जाता है परंतु ज्यों ही वह अपने रँग रूपवाले सिंहको जंगलका राजा बना हुआ देखता है त्यों ही वह अपना रूप पहिचानकर सिंहोंमें जा मिलता है अर्थात् उसे सिंहत्वका ज्ञान करा देनेके लिये अन्य सिंहका उपयोग होता है, अन्य सिंहसे सिंहका बच्चा और कुछ सहायता नहीं लेता। उसी प्रकार मनुष्य ईश्वरसे केवल अपने रूपको पहिचाननेकी कि मैं भी ईश्वर हूँ —सहायता लेता है, अन्य कुछ नहीं । फिर तो वह स्वयं ही ईश्वर हो जाता है । परंतु परावलंबी मनुष्य, ईश्वरकी तो बात न्यारी है एक मनुष्योंकी सहायताके लिये तड़फते हैं । हाहा खाते हैं । मिन्नत करते हैं । गुलामी तक करनेमें नहीं हिचकते । ऐसे मनुष्य अपनी इच्छाओंकी तृप्ति नहीं कर सकते । क्योंकि उनकी इच्छाएँ दूसरोंके आधीन रहती हैं । दूसरोंकी कृपा हुई तो उनकी इच्छा पूरी हो जा सकती है, यदि वह उस इच्छाको पूरा करना नहीं चाहे तो लाचार होकर इच्छा मारना पड़ती है । परंतु स्वावलंबी मनुष्य जो चाहता है वह स्वयं करता है । उसका यह दृढ़ निश्चय रहता है कि " संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो मैं प्राप्त न कर सकूँ " "ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे मैं सिद्ध न कर सकूँ " । वह अन्य कार्योंकी तो बात ही क्या, ईश्वरकी भी सिद्धि करनेका प्रयत्न करता है और अंतमें कर लेता है। ऐसोंहीके लिये नेपोलियनने कहा है कि स्वावलंबी मनुष्योंके कोशमें 'असंभव' शब्द ही नहीं है । स्वावलंबी मनुष्य कहता है कि " मैं लँगड़ा नहीं हूँ जो दूसरोंके पैरोंसे चलूँ। गूँगा नहीं हूँ जो दूसरोंके मुँहसे बोलूँ। बहिरा

नहीं हूँ जो दूसरोंके कानोंसे सुनूं। अंधा नहीं हूँ जो दूसरोंके नेत्रोंसे देखूँ। मैं चल सकता हूँ, उठ सकता हूँ, बैठ सकता हूँ, काम कर सकता हूँ, लिख सकता हूँ, पढ़ सकता हूँ, व्यापार कर सकता हूँ, आजीविका चला सकता हूँ, विचार सकता हूँ, ध्यान तक कर सकता हूँ। शरीर, हाथ, पाँव, कान, नाक, आँख मुँह सब मुझे प्राप्त हैं अतएव दूसरोंकी सहायता लेनेकी क्यों वांछा करूँ? क्यों लँगड़ा, लूला, अंधा, बहिरा, काना, गूँगा बनूं?। वह प्रत्येक कार्य स्वयं करता है। परावलंबी मनुष्य इसके विरुद्ध होते हैं।वे बात बातमें दूसरोंकी सहायता चाहते हैं। पैर होनेपर भी लँगड़े, कान, नाक, आँख, मुँह होनेपर भी बहिरे, अंधे, गूँगे बनते हैं। वे प्रत्येक कार्यमें दूसरेकी सहायताकी आकांक्षा रखते हैं। उन्हें अपने सब कार्य अधूरे दिखाई देते हैं और उन्हें पूरे करनेको अपने तईं अयोग्य समझते हैं। किसी कार्यको करनेसे कँपते हैं। बोलते, उठते, बैठते और कार्य करते उन्हें भय लगता है कि कहीं कुछ त्रुटि न रह जाय?। ऐसे मनुष्योंसे कुछ प्रगति नहीं होती। वे जहाँके तहाँ भी शायद खड़े नहीं रहने पाते। कभी कभी जिस तरह हवासे वृक्ष उखड़ पड़ते हैं, उसी प्रकार ये भी उखड़े चले जाते हैं, इनका पता ही नहीं चलता। परंतु कर्मवीर स्वावलंबी मनुष्य चिगते तक नहीं हैं। कैसी भी विघ्नों और आपत्तियोंकी वायु इनको हिला तक नहीं सकती। ऐसे ही मनुष्योंके लिये कविने कहा है कि:—

"किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्?"

अर्थात् क्या मंद्रराद्रि पर्वत भी कभी चलायमान हो सकता है? सारांश यह है कि जिस तरह प्रलय कालकी वायुसे सुमेरु

पर्वत चलायमान नहीं हो सकता, उसी प्रकार स्वावलंबी मनुष्योंका धैर्य—दृढ़ निश्चय, कैसी भी विघ्न और आपत्तियोंकी वायु चले, ढीला नहीं हो सकता । संसारके इतिहासको स्वावलंबी मनुष्य ही गति देते हैं। यदि संसारमें स्वावलंबी मनुष्य न हुए होते तो संसारका इतिहास भी नहीं बनता । आज जो हम रामचन्द्र, महावीर, बुद्ध, चन्द्रगुप्त, प्रताप, सीता, द्रोपदी, राजस्थानकी अगणित नारियों, लक्ष्मीबाई आदिका नाम बड़े गौरवसे स्मरण करते हैं उसका कारण क्या है ? यही स्वावलंबन । पिताकी आज्ञा दे देनेपर राजपाटको छोड़कर बनमें मारे मारे भटकते फिरनेको क्या कोई परावलंबी तैयार हो सकता है ? दूसरोंका मुँह ताकनेवाले क्या कभी इतना भारी साहस कर सकते हैं ? यह स्वावलंबनका ही प्रताप है जो रामचन्द्रने वैभवपर लात मार दी और जंगल-जंगल भटकते फिरे । राजपाट, धनदौलत, भाईबंधु, दासदासी-को छोड़कर नग्न रूपसे अत्यानंदमें मग्न होकर जंगल-जंगल भटकते फिरना और दुनियाँसे पापिनी हिंसाका मुँह काला करनेकी मिशनका कार्य करना, क्या परावलंबी कर सकते हैं ? । नहीं, यह स्वावलंबन-की साक्षात् मूर्ति और स्वावलंबनका ही उपदेश देनेवाले महावीरका ही कार्य है । जो डंकेकी चोट कहता है कि ईश्वर स्त्री नहीं है जिसकी तुम जीवनकी विजयके लिये सहायता चाहते हो, वह इन झगड़ोंमें नहीं पड़ सकता । तुम स्वयं अनंत शक्तिके धारक हो—ईश्वर हो—अपनी शक्तिको काममें लो । क्या परावलंबियोंसे कोई आशा कर सकता है कि वह महाराजा प्रतापके समान विपत्तियोंका सामना कर सके ? यदि प्रतापके स्थानपर कोई परावलंबी महाराणा

हुआ होता तो बादशाहकी गुलामी इन दुःखोंकी अपेक्षा स्वीकार करनेमें ही अपना सौभाग्य समझता । कहनेका प्रयोजन यह है कि स्वावलंबी मनुष्य ही मनुष्य है परावलंबी मनुष्य पशुके, अरे ! पशुके समान भी नहीं है, क्योंकि पशु भी तो स्वच्छंद वृत्तिसे अपना जीवन निर्वाह कर सकते हैं । इसलिये प्रत्येक मनुष्यको स्वावलंबन अपना गुण समझकर प्रत्येक कार्य्य स्वयं करना चाहिये । किसी भी कार्यके लिये चाहे वह कितना ही छोटा या बड़ा हो, दूसरेकी सहायताकी इच्छा न करना ही मनुष्यत्व है ।

समय और समयक्रम ।

शायद ही कोई दिन जाता होगा जिस दिन हम यह नहीं कहते हों कि समय जाते देर नहीं लगती है । हम कहते ही नहीं, किंतु स्वयं इसके प्रवाहमें बहते भी तो हैं । कलकी बात है, हम अपनी माताकी गोदीमें बैठकर दूध पीते थे, कुटुम्बी जनोंकी गोदीपर चढ़कर इधर उधर आते जाते थे, पालनेमें सोते थे । परन्तु अब वे बातें सुखस्वप्न हो गईं । अब हमें अपनी संतानको गोदमें लेना पड़ता है । और स्वयं तकलीफ उठाकर उसे सुख देना पड़ता है । हमारा स्थान दूसरेने छीन लिया । देखते देखते २०, २५ वर्ष निकल गये । अरे अब तो हमसे लोग अधेड़ कहने लगे ! क्या अब हमारी जिंदगी इतनी ही और है जितनी कि हम भोग चुके हैं ! इतने दिन तो बात करते करते निकल गये, हमने तो जाना ही नहीं । तीस वर्षका लंबा समय क्या इतनी जल्दी शीघ्र व्यतीत हो जाता

है ? ऐसा हमें अपनी आयुको व्यतीत होते देखकर प्रतिदिन कहना पड़ता है। परन्तु दुःख है कि तो भी हम नहीं चेतते। प्रतिदिन हम अपनी आँखोंके आगेसे घड़ी घंटा मिनिट और सेकंडोंके रूपसे दिन रात्रि सप्ताह मास और वर्ष जाते देख रहे हैं परन्तु कुछ दुःख ही नहीं होता ? कितना भारी आश्चर्य ! जो चीज़ जानेपर हमें कभी नहीं मिले उसके लिये भी इतनी बेपरवाही करना क्या कुछ कम आश्चर्य है ? जिस समयके उपयोगसे हम अगणित लाभ उठा सकते हैं, जिस समयका रस चूसकर हम हृष्ट पुष्ट और बलवान् बन सकते हैं, जिसको काममें लानेसे अपनी इच्छाएँ तृप्त कर सकते हैं उसी समयको निरर्थक खो देना कितनी भारी मूर्खता है। यह कितने दुःखकी बात है कि जिस समयको हम खेलनेमें, भोगविलासमें, सोनेमें, आलस्यमें खो देते हैं उसी समयको यदि हम उपयोगमें लें तो हम बड़े भारी विद्वान्, अनुपम वक्ता, अद्भुत ग्रंथकार और बड़े भारी धनाढ्य बन सकते हैं। समयका दुरुपयोग करना एक प्रकारका रोग है जिसके आक्रमणसे बड़ेसे बड़ा सेनापति भी मर जा सकता है। हम इस संसारमें चीटी-चिँउटेके समान जीने और मरनेहीके लिये नहीं आये हैं। हमारा आनेका और भी बड़ा भारी कोई उद्देश्य है जिसका हमें पालन करना चाहिये और वह उद्देश्य समयका सदुपयोग विना किये पूरा नहीं हो सकता। जिस तरह हम आम चूसकर उसकी गुठली और छिलके फैंक देते हैं परंतु हमें दुःख नहीं होता, उसी तरह जो समयका सदुपयोग कर लेते हैं वे सदा संतुष्ट रहते हैं। उन्हें किसी प्रकारकी लालसा नहीं रहती। वे अंत समय शांतिके साथ मरणको प्राप्त

होते हैं । परंतु जो मनुष्य समयका उपयोग न कर उसे एशो आराममें खोता है, वह हाथमें आये हुए आमके चले जानेके समान दुःखी होता है कि हाय मैंने कुछ नहीं किया ! यदि इस आमको चाखा होता तो मुझे बड़ा स्वादिष्ट रसका आनंद आया होता । अतएव पाठको ! इस शीघ्रगामी समयको अपने वशमें करो अर्थात् शुभ कार्योंसे इसका रस चूस लो । निरर्थक मत जाने दो । कुछ न कुछ काम करो । सोनेमें, खाने पीने आदिमें नियत समयसे अधिक समय मत खर्चो । एशो आरामके लिये एक मिनिट भी मत दो, उसके लिये कंजूस बन जाओ । ज्ञान देने, ज्ञान प्राप्त करने, आजीविका चलाने, परोपकार करनेमें ही अपने समयका उपयोग करो । समयके व्यर्थ न जानेके लिये अपना दैनिक समयक्रम बना कर रखो । और उसके अनुसार दिनभर व्यवहार करो । रात्रिको सोनेके समय विचारो कि आज कौनसा समय निरर्थक गया । और फिर दूसरे दिन उस अपनी भूलका सुधारा कर लो । कई मनुष्य समयक्रम बना तो रखते हैं परंतु उसके अनुसार बहुत कम चलते हैं । क्योंकि उन्हें जो पहिलेका अभ्यास समयके दुरुपयोग करनेका पड़ा रहता है उस अभ्यासके कारण उनका मन समय-क्रमकी आधीनता स्वीकार करनेको उद्यत नहीं होता । समयक्रमके कार्योंको वे दूसरे समयके लिये टालते रहते हैं । इस तरहसे वे कोई भी काम पूरा नहीं कर पाते । अतएव समयक्रमके अनुसार काम करना चाहिये । यदि मन चंचलताके कारण उसके अनुसार कार्य करनेके लिये उद्यत न हो तो दृढ़ताके साथ उसका सामना करना चाहिये और वह काम कर डालना चाहिये । यहाँ

यह भी ध्यान रखना उचित है कि यदि कोई आवश्यकीय कार्य अचानक आ जावे और समयविभागके अनुसार उस समय दूसरा काम हाथमें हो तो पहिले दोनों कार्योंकी आवश्यकतापर विचार कर जो काम अधिक आवश्यकीय हो वह करना चाहिये। उस समय समय विभागकी उपेक्षा कर डालनेमें आनाकानी नहीं करना चाहिये। कई ऐसे समयके पाबंद मनुष्य देखे गये हैं जो नियमित कार्योंको करनेमें इतने व्यस्त हो जाते हैं कि आवश्यकीय कार्योंकी ओर ध्यान ही नहीं देते । इस प्रकारकी पाबंदी भी हानिकारक होती है । यह बात सदा ध्यानमें रखना चाहिये कि समयविभाग चक्र (Time Table) हमारे लिये है । हम उसके लिये नहीं हैं । समयविभाग चक्र बनानेका केवल यही प्रयोजन है कि समय निरर्थक न जाने पावे और किसी कार्यमें व्यर्थ समय व्यतीत न होने पावे । समयविभाग चक्रके इस हेतुको ध्यानमें रखकर हमें उसकी चालना करना चाहिये । और समयको व्यर्थ न जाने देना चाहिये।

दोषका स्वीकार करना ।

भूल होना प्राणीमात्रके लिये संभव है । फिर अपनी भूल स्वीकार करनेमें क्यों आगा--पीछा सोचना चाहिये। जो अपनी भूल स्वीकार नहीं करते वे मानों सर्व जन विदित :खड्डेपर सफेद चादर बिछाकर पथिकोंको धोका देना चाहते हैं। उस धोकेमें नवीन पथिक भले ही आ जाँय परंतु चतुर और जानकार पथिक नहीं आ सकते । और एक न एक दिन वह प्रगट हो जाता है । जब कि

भूलना मनुष्यका स्वभाव है, फिर उस स्वभावको छुपानेसे क्या लाभ ? वह छुपानेसे नहीं छुप सकता, किंतु और भी दुःखदायी रीतिसे प्रगट होता है। यदि दोष स्वीकार कर लिया जाय तो उसका अंत वहीं आ जाता है और यदि वह छुपाया जाय तो उसके लिये कई भयंकर और असत्य प्रयत्न करना पड़ते हैं। भूलका—दोषका छुपाना एक रोग है जो मनुष्यको घुला घुलाकर मारता है। कई मनुष्य अपनी भूलोंको यहाँ तक छिपाते हैं कि उनकी बातोंपरसे सर्व साधारणका विश्वास उठ जाता है और वे झूँठेके नामसे प्रसिद्ध हो जाते हैं। फिर उनका कोई विश्वास नहीं करता। उनका सच्च कहना भी कोई नहीं मानता। दोष स्वीकार करनेसे हमारे हृदयपरसे एक बोझ हलका हो जाता है और जिस दोषके कारण हम आजन्म संतप्त रहते हैं उससे हमें शांति मिल जाती है। दोष प्रगट करनेहीके लिये भारतमें प्रायश्चित्त-की विधि प्रचलित की गई है। कहा जाता है कि दोष प्रगट कर देनेसे उसके अशुभ फलमें कमी हो जाती है इसका कारण यही है कि दोष प्रगट न करनेसे, उसके छिपानेके लिये जो असत्य प्रयत्न करना पड़ते हैं उनसे छुटकारा हो जाता है और वह दोष बढ़ने नहीं पाता। प्रत्युत आलोचना, प्रत्यालोचना और पश्चा-त्तापकी अग्निसे परिमार्जित हो जाता है। दोष स्वीकार करनेसे कितने ही अपराधी दंडमुक्त हुए देखे जाते हैं। और अस्वीकार करनेवाले अधिक दंड पा जाते हैं। अतएव अपने अपराधका—दोषका-भूलका स्वीकार करना एक गुण समझना चाहिये। महाराजा सप्तम एडवर्ड एक बार मोटरमें जा रहे थे उन्होंने ड्राइव्हरसे जिस मार्गपर

लेजानेके लिये कहा वह मार्ग बंद था अतएव ड्राइव्हरने निवेदन किया कि यह मार्ग बंद है। पर आपने नहीं माना और उसी मार्गपर ड्राइ-व्हरको जाना पड़ा। पर आगे जा कर जब वह मार्ग महाराजने बंद देखा तब अपनी भूल स्वीकार कर ड्राइव्हरसे क्षमा माँग ली। इतने बड़े सम्राट्का एक साधारण पुरुषसे क्षमा माँगना कई एकोंको अनुचित दिखेगा परंतु जिनकी आत्मा बलवान् और विशाल होती है व जिन्हें मानवीय स्वभावका ज्ञान होता है वे क्षमा माँगनेमें नहीं हिचकिचाते। वे अपनी भूलको स्वीकार करनेमें सदा उद्यत रहते हैं। भूल स्वीकार कर लेनेसे आगेका मार्ग निःकंटक हो जाता है और स्वीकार न करनेसे आगेके मार्गमें भी वही भूलका काँटा आ गड़ता है जिसके कारण आगे बड़नेमें असमर्थ हो जाते हैं। भूलको स्वीकार न करनेवाले मानों अपनेको सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् सिद्ध करना चाहते हैं क्योंकि इनके सिवाय सब प्राणी भूलभरे हुए और दोषी हुआ करते हैं। इसलिये अपने अपराधको प्रगट करके भूलको मत छिपाओ। अपराध करना, भूल होजाना जितना बुरा नहीं है जितना कि उसका छिपाना बुरा है।

उपयोगी शिक्षाएँ।

आत्मस्वभाव ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है। और वही सुख व शांतिका स्थान है अतएव आत्मस्वभावको जाननेका प्रयत्न करना उचित है।

ज्ञान ही सुखका कारण है। अतएव जहाँसे भी वह मिले प्राप्त

देशकी स्थिति जाननेके लिये समाचारपत्र प्रतिदिन पढ़ो औ
कमसे कम देशी भाषाके किसी एक समाचारपत्रके ग्राहक अवश
बनो। उत्तमोत्तम शिक्षाप्रद पुस्तकें पढ़नेमें प्रतिदिन कुछ सम
अवश्य दो। क्योंकि बिना पुस्तकोंके पढ़े ज्ञानमें व्यापकता नहीं आती

मितव्ययी बनो, पर लोभी मत बनो। और अपने व्ययप
सदा ध्यान रखो कि तुमने कोई फिजूल खर्च तो नहीं किया है
यदि किया हो तो आगेसे वैसा न करनेकी प्रतिज्ञा करो।

अपना व्यवहार सदा दयालु और प्रेम व उदारतापूर्ण रखो
सेवकोंके प्रति घृणा न करो क्योंकि वे तुम्हारे जीवनके बड़े भारी
सहायक हैं। यह न समझो कि तुम उनकी सेवाके बदलेमें द्रव्य
देकर उनका उपकार कर रहे हो। ऐसा समझना बड़ी भारी कृतघ्नता
है। क्योंकि तुम जो द्रव्य देते हो वह उनकी सेवाके मूल्यके
आगे कुछ भी नहीं है।

यदि तुमने किसीकी सेवा वृत्ति स्वीकार कर रखी है तो उससे
शर्माओ मत। सेवा करो। परंतु गुलामी मत करो। आज्ञा पालन
करो परंतु अत्याचार मत सहो।

जहाँ तक हो सके न तो असत्य भाषण करो और न असत्य
भाषाका संसर्ग ही करो।

किसीको कभी मत सताओ। न किसीकी निंदा करो और
न किसीकी चुगु[illegible] खाओ। ऐसा करनेसे हिंसाका दोष लगता है।

किसीकी [illegible]तताका खून मत करो। और न उससे (सरलतासे)
लाभ उठाओ। क्योंके किसीकी सरलतासे लाभ उठाना धोका
देनेके समान है।

हमारे यहाँ नीचे लिखे हुए कार्यालयोंकी भी हिन्दी पुस्तकें बिकती हैं। ग्राहकोंको एकवार हमसे पुस्तकें बुलाकर व्यवहार डालना चाहिये:—

१ हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय–बम्बई।

२ हिन्दी ग्रंथ प्रकाशक मंडली–खंडवा।

३ प्रताप प्रेस–कानपुर।

४ स्वदेश बांधव प्रेस–आगरा।

५ गृहलक्ष्मी कार्यालय–प्रयाग।

सूरजमल जैन,

मल्हारगंज–इन्दौर।

प्राचीन जैन-इतिहास।

जैन समाजमें ऐसी पुस्तककी बड़ी आवश्यकता थी जिसमें हमारा प्राचीन इतिहास संग्रहीत हो। हमने इस आवश्यकताकी पूर्ति की है। और प्राचीन इतिहास दो भागोंमें तैयार किया है। पहिला भाग छप भी गया है। मूल्य केवल ।।।) है। इसमें वाँसुपूज्यस्वामी तकका इतिहास दिया है। यदि थोड़ेसेमें चौवीसों तीर्थंकरों और चक्रवर्ती, नारायण आदि महापुरुषोंका वर्णन जानना चाँहते हो तो इन पुस्तकोंको अवश्य खरीदो। विद्यार्थियोंके भी बड़े कामकी है। बहुत दिनोंसे पाठशालाओंमें पढ़ानेके लिये ऐसी पुस्तककी आवश्यकता थी। अंग्रेजी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको जैन-इतिहाससे परिचित करानेके लिये प्रत्येक जैनबोर्डिंगमें इसे पढ़ाना चाहिये।

श्राविकाधर्म।

इसमें स्त्रियोंके समझने योग्य ऐसे २ छोटे वाक्य रक्खे गये हैं जिन्हें वे हर समय स्मरणमें ला सकती हैं और आपदाओंसे बच सकती हैं। नीरोग, सच्चरित्रा और यशस्विनी बन सकती हैं। इसका प्रत्येक वाक्य मनन करने योग्य है, छपाई सफाई भी मनोहारिणी है, मूल्य ≈) प्रति प्रति और ८) सैकड़ा।

बम्बई, कलकत्ता, सूरतके छपे हुए जैनग्रंथ मँगानेका पता—

सूरजमल जैन, मल्हारगंज—इन्दौर।

जैनग्रन्थोंकी बिक्रीके लिये एजन्टोंकी ज़रूरत है। उक्त पतेसे पत्रव्यवहार करें।